UNIVERSAL
LIBRARY

OU_178400

UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83·1 S77G Accession No. H450

Author श्रीपतराय, संपा.

Title गल्प-संसार-माला. 1943.

This book should be returned on or before the date last marked below.

गल्प-संसार-माला

: संपादक :

श्रीपतराय

भाग-३ : बँगला

: लेखक-गण :

रवीन्द्रनाथ ठाकुर — शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय

प्रभातकुमार मुखोपाध्याय — शैलजानन्द मुखोपाध्याय

नन्दगोपाल सेन-गुप्त — प्रबोधकुमार सान्याल

प्रेमेन्द्र मित्र — बुद्धदेव बसु

विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय

: इस भाग के संपादक :

नन्दगोपाल सेन-गुप्त

सरस्वती-प्रेस,

बनारस

शाखाएँ : दिल्ली - लखनऊ - इलाहाबाद

द्वितीय संस्करण, १९४३
युद्ध-जनित अतिरिक्त व्यय-सहित
मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक
विश्वनाथ प्रसाद
ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी।

सूची

नंदगोपाल सेन-गुप्त—	बँगला का गल्प-साहित्य	:१:–:१०:
	[अनु०—रामचंद्र वर्मा]	
स्व० श्रीरवीन्द्रनाथ ठाकुर—	क्षुधित पाषाण	१७
	[अनु०—धन्यकुमार जैन]	
प्रभातकुमार मुखोपाध्याय—	फूल की कीमत	३३
	[अनु०—कामेश्वर शर्मा]	
शरच्चन्द्र चट्टोपाध्याय—	महेश	५७
	[अनु०—रामचंद्र वर्मा]	
शैलजानन्द मुखोपाध्याय—	मृत्युभय	७७
	[अनु०—गुप्तेश्वर]	
प्रेमेन्द्र मित्र—	हो सकता है	९३
	[अनु०—रामचंद्र वर्मा]	
प्रबोधकुमार सान्याल—	गंभीर	१२५
	[अनु०—गुप्तेश्वर]	
नंदगोपाल सेन-गुप्त—	डेन्टोलॉजी	१४१
	[अनु०—गुप्तेश्वर]	
बुद्धदेव बसु—	भ्रमर	१५१
	[अनु०—रामचंद्र वर्मा]	
विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय—	मेघ-मल्लार	१६७
	[अनु०—कामेश्वर शर्मा]	

लेखकों का परिचय-भाग सभी रामचन्द्र वर्मा द्वारा अनूदित।

बँगला गल्प-साहित्य

बँगला गल्प-साहित्य का इतिहास अधिक दिनों का पुराना नहीं है। बंकिमचन्द्र के हाथों बँगला उपन्यासों के जन्म देने का कार्य सम्पन्न हुआ था। लेकिन आज-कल हम लोग जिस प्रकार के साहित्य को छोटी कहानियों के अन्तर्गत लेते हैं, उस प्रकार का साहित्य या कहानियाँ बंकिमचन्द्र ने नहीं लिखी थीं। बंकिमचन्द्र के अव्यवहित पूर्ववर्त्ती कालीप्रसन्न सिंह लिखित 'हूतम पेंचार नक्शा' (अर्थात् उल्लू का चित्रण) नामक ग्रन्थ में एक प्रकार के व्यंग्यात्मक चित्र हैं। यद्यपि उसमें कहीं-कहीं गल्प के कुछ-कुछ लक्षण देखने में आते हैं, लेकिन फिर भी वह वास्तव में गल्प नहीं है। गल्पों का लिखा जाना आरम्भ हुआ है रवीन्द्रनाथ ठाकुर से ही। उन्हीं ने इसका सूत्रपात किया था और उन्हीं के हाथों से इसकी तीन चौथाई पूर्णता सिद्ध हुई है।

हमारे देश में प्राचीन काल में रूप-कथाएँ और पशु-पक्षियों की उपकथाएँ ही हुआ करती थीं। रूप-कथाएँ तो रहती थीं अन्तःपुर की महिलाओं की जबानों पर और उपकथाएँ थीं साहित्य के पृष्ठों में। जातक, कथा-सरित्सागर, पञ्चतन्त्र और हितोपदेश इत्यादि में इस प्रकार की उपकथाएँ यथेष्ट थीं। पृथ्वी के अन्यान्य देशों की भाँति इस देश में भी इनके इतिहास की समाप्ति हो चुकी है। अब उनका स्थान ग्रहण किया है मानवीय वेदनाओं से सम्पन्न छोटी कहानियों या गल्पों ने। लेकिन इन छोटी कहानियों की प्राण-प्रेरणा इस देश की मिट्टी से नहीं उत्पन्न हुई है, बल्कि यह आई है पाश्चात्य साहित्य से। अँगरेजों के अधिकार के युग में हम लोगों ने अपने इतिहास में केवल एक ही नई चीज गढ़कर तैयार की है; और वह चीज है साहित्य। हमारे यहाँ की प्राचीन विभिन्न शाखाओं में जो साहित्य विभक्त था, उससे आज-कल के प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य इतने अधिक विच्छिन्न और विलग हैं कि इन दोनों प्रकार के साहित्यों में किसी प्रकार के सुदूर के जातीय सम्बन्ध का आभास तक नहीं दिखाई देता। हमारा प्राचीन साहित्य प्रधानतः धर्म-मूलक था। उसका विषय-विन्यास, चरित्र-चित्रण, रचना-प्रणाली आदि सभी

बातें उसी के अनुरूप थीं। इस देश की संस्कृति, शिक्षा और अनुश्रुति ने उन सब साहित्य-शाखाओं को संजीवित किया था। शताब्दियों पर शताब्दियाँ बीतती चली गईं, लेकिन फिर भी वैचित्र्य-विहीन, उत्थान-पतन-विहीन और एक ही बने हुए मार्ग से यह साहित्य-धारा बराबर बहती चली आई है। अँगरेजी शासन-काल में जिस प्रकार हम लोगों के बहुत दिनों से चले आये हुए सामाजिक संस्कारों, सामाजिक संघटनों और शिक्षा-प्रणाली में विजातीय भावादर्श ने प्रवेश किया और उस आदर्श-विपर्यय के परिणाम-स्वरूप धीरे-धीरे एक नवीन जीवन-आदर्श की सृष्टि हुई, उसी प्रकार हमारे यहाँ के साहित्य में भी कृष्ण-लीला-संगीत, श्यामा-संगीत, ग्राम्य-संगीत और मंगल-काव्यों के नपे-तुले और एक रूप में बँधे हुए इतिहास में पहले-पहल पाश्चात्य साहित्य के दुर्निवार जल-प्लावन के स्रोत ने प्रवेश किया। हम लोगों के पास जो पुरानी पूँजी थी, वह इस विक्षोभ में टूट-फूटकर, उलट-पुलट-कर और धोई-पोछी जाकर इस स्रोत में बिलकुल निःशेष हो गई। जब यह उद्दामता कुछ रुकी, तब हम लोगों ने देखा कि एक नवीन साहित्य के आदर्श की मृत्तिका का स्तर फिर से जाग उठा है, जो था तो हमी लोगों का, परन्तु फिर भी जिसकी हम लोगों ने कभी आशा नहीं की थी।

जीवन की ओर से नये और पुराने के समन्वय का धीरे-धीरे साधन हो गया है। इसी लिए पुराने का भग्नावशेष समाज के शरीर में यथेष्ट मात्रा में बच रहा है। किन्तु साहित्य की ओर से सम्बन्ध-सूत्र बिलकुल टूट गया है। यह समझ में नहीं आता कि यह बात किस तरह हुई। अब यह प्रश्न उठाने से कोई लाभ नहीं कि यह जो कुछ हुआ है, वह अच्छा हुआ है या बुरा। जिस दुर्लंघ्य नियति ने इस देश में अँगरेजी शासन का प्रवर्त्तन किया था, उसी की अमोघ व्यवस्था से यह बात अनिवार्य रूप से हुई है। इस आदर्श-संघात के परिणाम-स्वरूप बँगला-साहित्य में पहले देवताओं और देवियों की कहानियों की जगह नर-नारियों की कहानियाँ बनने लगीं और देव-माहात्म्य के स्थान पर देश के महत्त्व की स्थापना हुई। अनेक प्रकार के संस्कार, अनेक प्रकार के अन्ध तथा अयौक्तिक विश्वास और अनेक प्रकार की भाव-प्रवणताओं के कारण इस देश का साहित्य दिन पर दिन मेरु-दंड से हीन होता जा रहा था। उसी के निर्विरोध आश्रय में देश का मन भी धीरे-धीरे बहुत ही संकुचित हो गया था। इस निष्प्राण गतानुगतिकता पर अँगरेजी साहित्य ने

प्रबल रूप से आघात किया। इस बाहरी आदर्श ने जाति को आत्म-मर्यादा से सजग कर दिया। अँगरेज़ी साहित्य ने भारतवासियों के मन में अपने देश और अपने आदर्श को उच्च तथा महान् रूप में और नये ढंग से गढ़ने की प्रेरणा उत्पन्न की। बंकिमचन्द्र और मधुसूदनदत्त बँगला-साहित्य के नव-युग के इतिहास के पहले दो अध्याय हैं।

पहले अन्यान्य प्रान्तों की भाँति बँगला-साहित्य भी मूलतः छन्दोबद्ध ही था। अँगरेज मिशनरियों ने अपने प्रचार-कार्य में सहायता देने के लिए बँगला-भाषा में गद्य-रचना का प्रवर्त्तन किया था। बँगला-भाषा में पहला समाचार-पत्र प्रकाशित करने का गौरव भी उन्हीं लोगों को प्राप्त है। इसके कुछ ही दिन बाद राममोहन राय हुए। उन्होंने भी जनता में शिक्षा का प्रचार करने और साथ ही धर्म-प्रचार करने के लिए बँगला की गद्य-रचना में हस्तक्षेप किया था! किन्तु मिशनरी बँगला या राममोहन राय की बँगला रचनाएँ प्राथमिक प्रयास के रूप में चाहे जितनी अधिक सम्माननीय क्यों न हों, परन्तु वे चीजें स्थायी नहीं हो सकी थीं। और इसका कारण यही था कि उस बँगला-भाषा की धारणा-शक्ति कम ही थी और उसमें किसी प्रकार केवल वक्तव्य ही प्रकाशित किया जा सकता था। उस बँगला में साहित्य की रचना नहीं हो सकती थी। विद्यासागर ने संस्कृत महावरों को बँगला में रूपान्तरित करके एक ध्वनि-बहुल गद्य-शैली प्रस्तुत की। उसके पास ही पास देशज मुहावरों और भंगीसंवलित एक सहज गद्य-शैली और टेकचन्द ठाकुर आदि के द्वारा प्रस्तुत हुई। इन दोनों धाराओं को मिलाकर और एक नवीन और सतेज रचनादर्श प्रस्तुत करके बंकिमचन्द्र ने आरम्भिक बँगला-गद्य की शैशवावस्था पर यौवन की अवतारणा की। भाषा की गठन का काम इस प्रकार पूरा हो जाने पर अब साहित्य की रचना आरम्भ हुई। इस नवयुग के साहित्य के इतिहास में बंकिमचन्द्र का नाम ही सर्वश्रेष्ठ है। पहले बँगला-गद्य तो था, परन्तु उसमें साहित्य नहीं था। विद्यासागर की रचनावली और टेकचन्द्र ठाकुर की रचनावली भाषा के क्रम-विकास में उल्लेखनीय अवश्य है; किन्तु उसकी गणना साहित्य में नहीं हो सकती। बंकिमचन्द्र जिस समय अपने प्रसिद्ध उपन्यास लिख रहे थे, उस समय उन्होंने रस-सृष्टि के प्रयोजन की अपेक्षा आदर्श-स्थापन के प्रयोजन का ही अधिक अनुभव किया था। विजातीय शिक्षा तथा आदर्श के एकान्त अनुकरण

के फल-स्वरूप जाति को उस समय दिग्भ्रम हो गया था। उसे प्रकृतिस्थ करने और अपने ठीक स्थान पर लाने के लिए इस बात की आवश्यकता थी कि उसके सामने बड़े बड़े और आदर्श पुरुषों और स्त्रियों के चरित्र लाकर रखे जायँ। इस शिल्प-दृष्टि का सूक्ष्म कार्य और कला-कौशल वे अवलम्बित ही नहीं कर सके थे। यह बात न तो उन्हीं से हुई थी और न मधुसूदनदत्त से ही हो सकी थी। इसी लिए बंकिमचन्द्र को छोटी कहानियों और मधुसूदनदत्त को गीति-काव्य में हस्तक्षेप करने का अवसर नहीं मिला। हो सकता है कि इसका बहुत कुछ उत्तरदायित्व उस समय की शिक्षा पर ही हो। अथवा हो सकता है कि इस आदर्श प्रीति का जन्म इसलिए हुआ हो कि बंकिमचन्द्र ने तो स्काट को और मधुसूदन दत्त ने मिल्टन को अपना आदर्श बना रखा था।

सौभाग्यवश बंकिमचन्द्र और मधुसूदनदत्त के युग का अन्त होने से पहले ही रवीन्द्रनाथ का आविर्भाव हुआ। रवीन्द्रनाथ ने अकेले ही भाषा और साहित्य के सभी अङ्गों को एक शताब्दी भर के लिए उपयोगी प्राण-शक्ति देकर नये सिर से बँगला-संस्कृति का इतिहास स्थापित किया। इस बहु-शाखा-विशिष्ट रवीन्द्र-साहित्य में छोटी कहानियाँ एक खण्डित अङ्ग मात्र हैं। रवीन्द्रनाथ की प्रतिभा का वह गौण पार्श्व है। किन्तु इस एक-मात्र पार्श्व में भी यदि और किसी लेखक में उनके समान कृतित्व होता, तो वह केवल उतने से ही धन्य हो सकता। रवीन्द्रनाथ बँगला भाषा में गल्पों के सबसे पहले प्रवर्त्तक हैं। और सम्भवतः इस समय भी वे अपने अवलम्बित किये हुए आदर्श के अनुसार सर्वश्रेष्ठ गल्प-लेखक हैं। उनकी गल्पों में जितना वैचित्र्य होता है, उनकी सुन्दर रचना-शैली जितनी ही विशुद्ध है और व्यंजना जितनी गम्भीर है, उसका ध्यान रखते हुए कहा जा सकता है कि बँगला में इस समय भी उनके जोड़ का और कोई लेखक नहीं है। बंगाल की प्रकृति और बंगालियों के नित्य-प्रति के सुख-दुःख की तरंगों से भरे हुए प्रशान्त जीवन की पट-भूमि पर इन गल्पों का जन्म हुआ है। इनमें न तो कोई बहुत बड़ा द्वन्द्व ही है, न कोई बहुत बड़ी समस्या ही है और न कोई बहुत बड़ा आवेदन ही है। ये गीति-काव्यों की ही भाँति स्वच्छ, सुन्दर और मर्मान्त को स्पर्श करनेवाली हैं। रवीन्द्र-नाथ की सभी छोटी कहानियाँ काव्य के धर्म से युक्त हैं। इसी लिए इन कहानियों के पुरुषों और स्त्रियों में और उनके कार्य-कलाप में प्रत्यक्ष संसार की कठिन वास्त-

विकता की छाप की अपेक्षा भावमय विश्व-मानव की ही अधिक छाप दिखाई देती है। इसी लिए हम लोगों को और भी कुछ देर तक, अर्थात् शरच्चन्द्र और उनके अनुगामियों के आविर्भाव तक, प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

(२)

रवीन्द्रनाथ के समय से लेकर शरच्चन्द्र के आविर्भाव तक बँगला की छोटी कहानियों में और कोई नवीन परिणति नहीं दिखाई देती। इस बीच में केवल एक ही बात हुई थी। इस काल में वैदेशिक छोटी कहानियों का बहुत अधिक मात्रा में अनुशीलन हुआ था। अनुवाद तो हुए ही थे, पर साथ ही अनुकरण भी हुआ था। मोपाँसा, बालजक, जोला, गोतिये, दोदे आदि प्रमुख तथा जगद्विख्यात फ्रान्सीसी लेखकों की छोटी कहानियाँ बंगालियों की दृष्टि के सामने नित्य नये-नये आदर्श और नई-नई परिकल्पनाएँ उपस्थित कर रही थीं। इन कहानियों ने जिस प्रकार देशी लेखकों को रस-परिवेशन के लिए उद्‌बुद्ध किया था, उसी प्रकार देशी पाठकों को कहानियों के रसास्वादन का अभ्यस्त भी कर दिया था। रवीन्द्रनाथ ने गल्प-रचना की प्रेरणा विदेश से ही प्राप्त की थी। किन्तु उनकी शैली सदा और पूर्णरूप से बिलकुल अपनी ही थी। मणि-हारा, दुराशा, कंकाल, पोस्टमास्टर, खूदित पाषाण, आपद आदि में से चाहे जो कहानी उठाकर देखिये, पता चलता है कि उन्होंने उसमें एक नवीत रीति का प्रवर्त्तन किया है, जो और किसी से नहीं मिलती। इसके सिवा घटना-संस्थान, चरित्र-चित्रण तथा भाव-व्यंजन में ये सब कहानियाँ उच्च श्रेणी की कहानियाँ लिखनेवाले संसार के ही किसी बड़े लेखक की रचना के सामने समान ज्ञातित्व का दावा कर सकती हैं। शरच्चन्द्र के साहित्य में छोटी कहानियों की संख्या कम है। किन्तु जो थोड़ी-सी कहानियाँ उन्होंने लिखी हैं, वे परम विशुद्ध हैं और विशेष रूप से अपने बिलकुल निजी और स्वतन्त्र पथ पर चलती हैं। शरच्चन्द्र की कहानियों में मनुष्य की भावात्मक सत्ता और उसकी आनुषंगिक वेदनाओं का स्वीकार नहीं किया गया है। उन्होंने मनुष्य के प्रत्यक्ष अस्तित्व को उसके प्राप्तव्य परिवेश के अन्दर से ही देखा है; और उसी को उन्होंने अकुण्ठित ममता के साथ रूप प्रदान किया है। इसी लिए रवीन्द्रनाथ की कहानियों की पट-भूमि कुछ अंशों में नैर्व्यक्तिक है, लेकिन शरच्चन्द्र के साहित्य में वह व्यक्तिगत है।

इन दोनों के बीच में जिनका नाम विशेषरूप से उल्लेख के योग्य है, वे हैं प्रभातकुमार मुखोपाध्याय। उनकी रचनाएँ छोटी हैं और रवीन्द्रनाथ की रचनाओं की तरह भावगर्भित नहीं हैं। वे शरच्चन्द्र की तरह मानव-केन्द्रिक भी नहीं हैं। रहस्य या कौतुक के आश्रय से उनकी कोई-कोई कहानियाँ विशेष रूप से पढ़ने के योग्य हैं। परन्तु फिर भी उनकी अधिकांश रचनाएँ मानो बहुत कुछ यन्त्र-बद्ध-सी हैं। उनकी एक-दो कहानियों में एक नया सुर दिखाई देता है। इंग्लैंड-प्रवासी भारतवासियों के साथ होनेवाले अँगरेजों के वैषयिक तथा मानसिक आदान-प्रदान की अभिज्ञता के सम्बन्ध में जो बातें 'देशी उ बिलाती' नामक ग्रन्थ में दी गई हैं, उनमें से कुछ सचमुच बहुत ही सुन्दर हैं। रचना-शैली और विन्यास-कौशल में प्रभातकुमार मूलतः रवीन्द्रनाथ के ही ढंग के हैं। बस इन्हीं तीनों लेखकों से बँगला गल्प-साहित्य की उन्नीसवीं शताब्दी सीमाबद्ध है। इन लोगों ने समाज के जिस स्तर का चित्रण किया है, वह मध्यवित्त कहलाता है। इस मध्यवित्त समाज के जीवन में किसी समय कुछ सुख था। लेकिन जो दुःख था, वह भी अपरिसीम नहीं था। इसके बादवाला स्तर दरिद्रों का है। वह स्तर इन लोगों के साहित्य में प्रधानता नहीं प्राप्त कर सका है। शरच्चन्द्र की रचनाओं में इस स्तर ने अवश्य ही कुछ स्थान पाया है; लेकिन वह केवल आनुषंगिक रूप से। इसी लिए इन लोगों की कहानियों में जो बातें कही गई हैं, वे अपेक्षाकृत निर्विरोध हैं; अर्थात् जिसे आधुनिक काल में बूरज्वा (Bourgeois) कहते हैं, ये लोग उसी सम्प्रदाय के लेखक हैं। इस दृष्टि से ये सभी थोड़े-बहुत आदर्शवादी हैं। अवश्य ही शरच्चन्द्र अन्त में इसी दरिद्र स्तर की ओर उतर रहे थे। उनकी 'महेश' नामक प्रसिद्ध कहानी ही इस बात की सूचक है। इसी के बाद आधुनिक काल आरम्भ होता है। इस काल में हमें कम से कम पाँच श्रेष्ठ गल्प-लेखकों का परिचय मिलता है, जिनमें से प्रत्येक असामान्य शक्तिमान् है। ये लोग रवीन्द्र-शरत्वाले मंडल के व्यर्थ अनुकरणकारी नहीं हैं।

बीसवीं शताब्दी के आरम्भ में जो महायुद्ध हुआ था, उसने जिस प्रकार एक ओर पृथ्वी की आर्थिक और सामाजिक भित्ति को खूब जोरों के साथ हिला दिया था, उसी प्रकार दूसरी ओर उसने उसके मानसिक ऐतिह्य या परम्परा की भित्ति को भी खूब जोरों का झटका दिया था। इससे पहिले और कभी इतना बड़ा सार्वभौम

विप्लव इस संसार में नहीं हुआ था। इस विपर्यय के परिणाम-स्वरूप सभी क्षेत्रों में समाजतन्त्रवाद दिखाई देने लगा है। गुरु और पुरोहित के योग से परम्परा से समाज का जो आदर्श चला आ रहा था, उस पर से मनुष्य की श्रद्धा हट गई है। जिस जीवन-धारा का इधर बहुत दिनों से आचरण होता आया है, उसकी उपयोगिता और उपयुक्तता के सम्बन्ध में मनुष्य के मन में सन्देह उत्पन्न होने लगा है। इस विपर्यय के परिणाम-स्वरूप मानसिक जगत् में मनोविज्ञान का जन्म हुआ है; और इस मनोविज्ञान ने शिल्प, सभ्यता, प्रेम और मनुष्यत्व के मूल सूत्रों का विश्लेषण करके उसका प्रकृत स्वरूप सब लोगों के सामने खोलकर रख दिया है। तभी से लोगों के मन में बहुत दिनों से चले आये हुए धार्मिक विश्वास और रस-बुद्धि के सम्बन्ध में सन्देह होने लगा है। इसके साथ-ही-साथ यन्त्र-विज्ञान की भी असीम उन्नति हुई है। अब जब कि मनुष्य अनायास ही समस्त प्राकृतिक बाधाओं पर विजयी होने लगा है, तब उसके चित्त से वह विश्वास-प्रवणता दूर हो गई है, जो पहले दुर्ज्ञेयता के कुहासे में छिपी हुई थी; और अब उसका स्थान विचार-सहित प्रत्यक्षता और विज्ञान-सम्मत वस्तु-सन्निवेश ने ले लिया है।

इसी नई आब-हवा में आधुनिक काल के साहित्य ने जन्म ग्रहण किया है। इसी लिए वह स्वभावतः हमारी बहुत दिनों से चली आई हुई परम्परा से बिलकुल स्वतन्त्र है। इसी स्वतन्त्रता ने उसके विगत-कालीन आदर्श का नाश कर डाला है। उसके स्थान पर उसने जिन नवीन पदार्थों का प्रवर्त्तन किया है, उनमें मुख्यतः तीन बातें पाई जाती हैं। उनमें से पहली बात है—समाज या राष्ट्र का धर्म के सम्बन्ध में विद्रोह। दूसरी बात है—दया, मया, प्रेम, प्रतिभा आदि बातों के सम्बन्ध में बाल की खाल निकालनेवाला विश्लेषण। और तीसरी बात है—व्यथित, पतित और अपमानित व्यक्तियों के सम्बन्ध में आन्दोलन। इन्हीं सबकी बुनावट को केन्द्र मानकर इस युग की कहानियाँ, उपन्यास, नाटक और कविताएँ लिखी जा रही हैं। युग की रुचि के अनुसार आज-कल छोटी कहानियाँ ही अधिक चलती हैं, और इसी लिए इन गल्पों या छोटी कहानियों में ही इस आधुनिकता का बहुत अधिक परिचय मिलता है। इस आधुनिकता पर दो अभियोग लगाये जाते हैं। एक तो अश्रद्धा का और दूसरा अश्लीलता का। मूलतः ये दोनों एक ही अभियोग के दो पर्याय हैं। किन्तु हम समझते हैं कि जब सत्य को अकुंठित रूप से, निर्मम भाव से

और नैर्व्यक्तिक ढंग से प्रकट करने की आवश्यकता होती है, तब प्रचलित संस्कारों पर अवश्य ही आघात होता है। इससे विचलित होना अनुचित है।

(३)

हमारे इस युग की कहानियों में प्रायः स्त्रियों और पुरुषों के प्रेम आदि से सम्बन्ध रखनेवाली बातें ही अधिक मात्रा में दिखाई देती हैं। यहाँ तक की अस्वाभाविक मनस्तत्त्व के प्रति भी इस युग के लेखकों की अनास्था नहीं है। इसी लिए जो बातें किसी समय सोचना भी पाप समझा जाता था, इस समय वे सब बातें निर्भय होकर लिखी जाती हैं। पिता-माता का सम्पर्क, भाई-बहन का सम्पर्क, धनिक और श्रमिक का सम्पर्क, राजा और प्रजा का सम्पर्क आदि बातें ऐसी हैं, जिन पर इस युग के लेखकों की बहुत तेज निगाह है। और कभी तो आधुनिक काम-शास्त्र, कभी समाज-विज्ञान और कभी राष्ट्र-विज्ञान की दृष्टि से इन चिर-अभ्यस्त सम्पर्कों की आज-कल के साहित्य में जाँच कर ली जाती है। यह बात नहीं है कि इसमें व्यभिचार या अनाचार न होता हो। लेकिन एक नवीन शक्ति का भी इसमें पता चला है। शैलजानन्द मुखोपाध्याय, प्रेमेन्द्र मित्र, विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय, प्रबोधकुमार सान्याल, जगदीश गुप्त इन पाँच गल्प-लेखकों की विभिन्न कहानियों से ही इस नव-जाग्रत युग की वाणी सुनाई देगी। इनमें से प्रथम और द्वितीय सचमुच ही बहुत बड़े साहित्य-स्रष्टा हैं। और बाकी लोग थोड़े-बहुत पुरातन-पन्थी हैं। इस दृष्टि से यद्यपि इन लोगों की भाषा और विषय-विन्यास में अभी तक रवीन्द्र का प्रभाव बहुत ही स्पष्ट रूप से दिखाई देता है, लेकिन फिर भी उसके साथ ही साथ उनका निजत्व भी प्रायः सभी जगह दिखाई देता है।

इस युग में गल्प-लेखकों में जिस प्रकार एक अप्रत्याशित उत्कर्ष दिखाई देता है, उसी प्रकार गल्पों के पाठकों में भी, उसी के अनुरूप, रुचि-विकास का परिचय मिलता है। जो लोग कहते हैं कि आधुनिक कर्म-व्यस्तता के सामने दीर्घ नाट्याभिनय देखने का अवसर नहीं है और इसी लिए सिनेमा का इतना अधिक प्रचार है, लम्बे-चौड़े उपन्यासों के पढ़ने का अवसर नहीं है और इसी लिए छोटी कहानियों का इतना अधिक आदर है, उनके सम्बन्ध में यह नहीं कहा जा सकता कि वे जो कुछ कहते हैं, वह बिलकुल ग़लत ही है। बादशाही पेचवान के बदले सिगरेट का

ही प्रचलन हो गया है ; अथवा बैल-गाड़ी की जगह हवा-गाड़ी का प्रचलन है, और यह मानना ही पड़ेगा कि ये सब बातें युग-धर्म की ही परिचायक हैं । किन्तु इसके साथ ही साथ यह माने बिना भी काम नहीं चल सकता कि पाठकों की मनोधारा भी बदल गई है । और इसका कारण यह है कि छोटी कहानियों का रचना-कौशल या उससे रस की उपलब्धि कराना कोई सहज बात नहीं है । क्योंकि छोटी कहानियों में संकेत रूप से सभी बातें रहती हैं । छोटी कहानियों में समग्रता लाने की गुञ्जाइश नहीं होती । चाहे कोई घटना हो, चाहे चरित्र हो, चाहे बातचीत हो, छोटी कहानियों में ये सभी बातें खंडित और आंशिक रूप से होती हैं । कहानियों में जो कुछ दिया जाता है, उसके अतिरिक्त और उससे बाहर उनका कुछ आरम्भ भी होता है और कुछ अन्त भी रहता है । बीच में से कोई एक टुकड़ा लेखक उठा लेता है। बिजली की चमक की तरह वही एक खंडित मुहूर्त्त या वृत्ति या प्रश्न अपने आस-पास के परिवेश को कुछ उद्भासित करके अन्धकार में विलीन हो जाता है । थोड़ी देर के लिए यह जो कुछ दिखाई देता है, वह सम्पूर्ण नहीं होता । लेकिन उसका परिचय उस कहानी में ही सीमा-बद्ध होता है । उसके बाहर जो कुछ होता है, वह पाठक को खुद ही अपनी कल्पना से समझना पड़ता है । किन्तु उपन्यास में इस बात की कोई आवश्यकता नहीं होती । कहानियों में इस अल्प सीमा के अन्दर ही लेखक अपना सारा मतवाद प्रच्छन्न रखता है । समस्त विचार-विश्लेषण का निपुणतापूर्वक प्रयोग करता है । इसी लिए शिल्प या रचना-कौशल की दृष्टि से छोटी कहानियों में बहुत-सी बातें ठसाठस भरी रहती हैं । और जब इस तरह की कहानियों का जन-साधारण में इतना आदर है, तब यही समझना पड़ेगा कि जनता की रस-बुद्धि उन्नत ही हुई है ।

सब के अन्त में एक बात और है । बँगला-गल्प-साहित्य की सूचना से आधुनिकतम परिणति तक जितने लेखकों का अविर्भाव हुआ है, उन सब के सम्बन्ध में विस्तृत आलोचना करने का यहाँ अवकाश नहीं है । इस प्रसंग में इस कार्य की कोई सार्थकता भी नहीं दिखाई देती । इस आलोचना में हमने संक्षेप में यही बतलाने का प्रयत्न किया है कि मूलतः बँगला-गद्य की उत्पत्ति और विस्तार के मार्ग में छोटी कहानियों ने किस प्रकार इतनी उन्नति की है और किन-किन लेखकों ने उस क्रम-परिणति के मार्ग में साहित्य को सबसे अधिक ऋद्ध किया है । पाठकों और

पाठिकाओं के सुभीते के लिए इसी से सम्बन्ध रखनेवाले समाज और संस्कृति का इतिहास भी थोड़ा-बहुत देना पड़ा है। युग-धारा के परिचय के लिए इसकी उपयोगिता अस्वीकृत नहीं हो सकती। कारण यह है कि लेखक चाहे कितना ही अधिक शक्तिशाली क्यों न हो, परन्तु फिर भी वह थोड़ा-बहुत युग-धर्मी अवश्य होता है। बस इतना कहकर ही हम आलोच्य संकलन का यह मुखबन्ध समाप्त करते हैं।

नन्दगोपाल सेन-गुप्त।

क्षुधित पाषाण

स्व० श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर

[बँगला सन् १२६८ के २५ वैशाख के दिन जोड़ा साँकूर के ठाकुर परिवार में रवीन्द्रनाथ का जन्म हुआ था। रवीन्द्रनाथ महर्षि देबेन्द्रनाथ के कनिष्ठ पुत्र थे। स्कूलों और कॉलिजों में जो पाठ्य-क्रम था, उसके फेर में ये नहीं पड़े थे और इन्होंने घर में ही विद्याध्ययन किया था। १७ वर्ष की अवस्था में ये सबसे पहले विलायत गये थे। इसके थोड़े ही दिन बाद इन्हें फिर कानून पढ़ने के लिए विलायत जाना पड़ा था। लेकिन कानून की पढ़ाई इनके स्वभाव के अनुरूप नहीं थी। इसलिए ये लौटकर स्वदेश चले आये और तब इन्होंने मन लगाकर साहित्य-सेवा करना आरम्भ किया। ४० वर्ष की अवस्था में ही ये अपने समसामयिक कवियों, नाट्यकारों, उपन्यास-लेखकों और निबन्ध-लेखकों में सर्वश्रेष्ठ माने जाने लगे; यद्यपि उन दिनों के कुछ लेखक इनकी निन्दा करके ही प्रसन्न होते थे। सन् १६१३ ई० में ये फिर एक बार विलायत गये थे। उस समय इनकी अधिकांश बँगला रचनाओं के अँगरेजी में अनुवाद हुए थे। इसके फल-स्वरूप इन्हें नोबल-प्राइज प्राप्त हुआ था और ये आधुनिक जगत् के अन्यतम तथा सर्वश्रेष्ठ लेखक माने गये। इसके उपरान्त इन्होंने पृथ्वी के प्रायः सभी सभ्य देशों में भ्रमण किया था; और उस समय इनकी मनीषा, पांडित्य, प्रतिभा और सबसे बढ़कर इनके सौन्दर्य तथा सदाचार ने सभी विश्व-वासियों को मुग्ध कर लिया था। इन्होंने तपोवन के आदर्श पर सरल और आडम्बर-रहित जीवन-निर्वाह और शिक्षा-दान के उद्देश्य से 'शान्ति-निकेतन' नामक आश्रम स्थापित किया था। वही अब विश्व-भारती या सार्वभौम ज्ञान-निकेतन के रूप में परिवर्त्तित हो गया है। रवीन्द्रनाथ की मृत्यु उनके पूर्वजों के निवास-स्थान कलकत्ते में ७ अगस्त १९४१ को हुई।

इसमें सन्देह नहीं कि इनकी लिखी हुई उक्त कहानी इनकी प्रतिभा की एक उल्लेख-योग्य शाखा है। लेकिन इस शाखा का उन्होंने बराबर अनुशीलन नहीं किया है। एक बार मध्य वयस में जमींदारी की देख-रेख के प्रसंग में इन्हें पद्मा नदी के किनारे कुछ दिनों तक रहना पड़ा था। उस समय बँगला-गार्हस्थ-जीवन के नित्य के सुख-दुःख और आशा-निराशा के मध्य में जो प्रशान्त जीवन-धारा बह रही थी, उसने उनका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट किया था।

इसी आकर्षण के परिणाम-स्वरूप इन्होंने अपनी समस्त गल्प-रचना की है। रवीन्द्रनाथ एक तो नागरिक ठहरे और तिस पर अभिजात वंश के हैं; इसीलिए वे स्वभावतः इस प्रकार के जीवन से विशेष सम्बन्ध नहीं रखते। लेकिन अति उग्र कल्पना और असीम शक्ति के कारण दूर से ही इस साधारण जीवन के रहस्य-लोक में इन्होंने प्रवेश किया था और उसका प्रत्येक स्तर खूब अच्छी तरह देख डाला था। यह देखना ही इनकी कहानियों का प्राण है। इनकी कहानियों में भाव-व्यंजना बहुत अधिक होती है और प्रत्येक कहानी में स्वप्न तथा वास्तविकता का बहुत ही सुन्दर समन्वय होता है। और इसीलिए वे सब सुषमा से मंडित हैं। आज-कल के विश्लेषण-तत्परतावाले युग में रवीन्द्रनाथ की कहानियों को देखने पर ऐसा जान पड़ता है कि वे कुछ काव्य-धर्मी हैं। लेकिन जो अकपट अनुभूति और सरस अभिव्यक्ति साहित्य का प्राण है, उसी ने इनकी कहानियों को अमरत्व के आशीर्वाद से विभूषित किया है। इस क्षुभित पाषाण की कहानी उनकी स्वप्न-दृष्टिमूलक कहानियों का सबसे अच्छा निदर्शन है। एक बार अहमदाबाद में इन्हें एक ऐसे मकान में रहना पड़ा था, जो बादशाही जमाने का था। इस अवसर पर इन्हें इस कहानी की रचना की प्रेरणा प्राप्त हुई थी।]

क्षुधित पाषाण

मैं अपने एक रिश्तेदार के साथ, पूजा की छुट्टियों में देश-भ्रमण करके कलकत्ते वापस आ रहा था ; अकस्मात् रेलगाड़ी में एक बाबू साहब से मुलाकात हो गई। उनका पहनावा देखकर पहले तो मुझे दिल्लीवाले मुसलमान का भ्रम हुआ। फिर उनकी बातें सुनकर मैं और भी भूलभुलैया में पड़ गया। संसार के सभी विषयों पर वे इस तरह बातचीत करने लगे कि मानो विधाता उन्हीं से सलाह-मशविरा करके सब काम किया करते हैं। सारे संसार में भीतर ही भीतर कैसी-कैसी अश्रुतपूर्व निगूढ़ घटनाएँ हो रही हैं, रूसी लोग कितने आगे बढ़ गये हैं, अंगरेज़ कैसे-कैसे खुफिया इरादे बाँध रहे हैं, देशी रजवाड़ों में कैसी खिचड़ी-सी पकती जाती है—इन सब बातों की ज़रा भी खबर न रखते हुए हम लोग बिलकुल निश्चिन्त पड़े सो रहे थे। हमारे नये परिचित मिलनसार बाबू ने मुसकराते हुए कहा—There happen more things in heaven and earth, Horatio, than are reported in your newspapers.—'हौरेशिओ, तुम्हारे इन अख़बारों में छपनेवाली ख़बरों से ज़मीन और आसमान में कहीं ज़्यादा वारदातें हुआ करती हैं!' हम पहले-ही-पहल घर से बाहर निकले थे, इसलिए उनकी बातचीत और रंग-ढंग देखकर दंग हो गये। हज़रत मामूली-सी बात पर कभी विज्ञान का, कभी वेद का और कभी चट से फारसी बैतों का ऐसा हवाला दे बैठते कि हमारी अक्ल काम न करती—विज्ञान, वेद और फारसी भाषा पर हमारा कोई अधिकार न होने से उनके प्रति हमारी श्रद्धा उत्तरोत्तर बढ़ती ही गई। यहाँ तक कि मेरे थियॉसोफिस्ट मित्र को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि हमारे इन सहयात्री मित्र का किसी अलौकिक शक्ति से कुछ-न-कुछ सम्बन्ध जरूर है;—चाहे किसी अपूर्व मैग्नेटिज़्म या दैवशक्ति से हो, या सूक्ष्म शरीर या उसी तरह की किसी और वस्तु से। वे इस असाधारण व्यक्ति की छोटी-से-छोटी बात भक्ति-विह्वल मुग्धभाव से सुन रहे थे और छिपे-छिपे उन्हें नोट कर रहे थे। मैंने मार्क किया कि वह असाधारण व्यक्ति भी भीतर ही भीतर इस बात को ताड़ गया था, और मन-ही-मन खुश भी हो रहा था।

गाड़ी आकर जब जंक्शन पर खड़ी हुई, तो हम दूसरी ट्रेन की प्रतीक्षा में वेटिंग-रूम में जाकर ठहर गये। रात के क़रीब साढ़े-दस बजे थे। मालूम हुआ कि रास्ते में कहीं कुछ गड़बड़ी हो जाने से गाड़ी आज लेट हो गई है। मैं टेबिल पर बिस्तर बिछाकर ज़रा सो लेने की तैयारी कर रहा था; इतने में उन महाशय ने एक बड़ा दिलचस्प किस्सा छेड़ दिया। उस रात को फिर मुझे नींद ही नहीं आई।

कहने लगे :—

राज्य-शासन के विषय में ज़रा-कुछ मतभेद हो जाने से जूनागढ़ का काम छोड़कर जब मैंने हैदराबाद निज़ाम-सरकार में प्रवेश किया, तब मुझे जवान और मज़बूत आदमी देखकर सरकार ने भड़ौंच में रूई की चुंगी का दरोगा बना दिया।

भड़ौंच बड़ी रमणीक जगह है। निर्जन पहाड़ियों के नीचे बड़े-बड़े जंगलों में होकर वहाँ की सुस्ता नदी (संस्कृत 'स्वच्छतोया' का अपभ्रंश हो सकता है) उपल-मुखरित मार्ग से निपुणा नर्तकी की तरह कदम-कदम पर टेढ़ी-तिरछी होती हुई तेज़ी से नाचती हुई चली गई है। ठीक उस नदी के किनारे ही संगमरमर से बने हुए डेढ़-सौ सीढ़ियों से सुशोभित बहुत ऊँचे घाट के ऊपर एक सफेद संगमरमर का महल पहाड़ के पैरों के पास अकेला खड़ा है—आस-पास कहीं भी कोई बस्ती नहीं। भड़ौंच की रूई की हाट और बस्ती यहाँ से बहुत दूर थी।

लगभग ढाई सौ वर्ष पहले दूसरे शाह महमूद ने अपने भोग-विलास के लिए, ऐसे एकान्त स्थान में, इसका निर्माण कराया था। किसी ज़माने में यहाँ स्नानशाला के फव्वारे के मुँह से गुलाब-जल की धाराएँ निकला करती थीं और उस शीकर-शीतल निर्जन स्नानागार में संगमरमर के स्निग्ध शिलासन पर बैठी हुई तरुणी ईरानी रमणियाँ अपने कोमल नग्न पद-पल्लवों को निर्मल जलाशय के स्वच्छ जल में फैला-फैलाकर, स्नान के पहले अपने लम्बे काले घुँघराले बालों को बखेरकर, सितार गोद में लिये, अंगूरी लताओं की तरह झूमती हुईं, गज़ल गाया करती थीं।

अब वे फव्वारे नहीं चलते, वे गीत नहीं होते और न अब पहले की तरह उस सफेद पत्थर पर उन शुभ्र-चरणों के सुन्दर आघात ही पड़ते हैं। अब वह हम-जैसे एकान्त-वास से पीड़ित संगी-शून्य महसूल कलेक्टरों का अति विशाल और अत्यन्त शून्य वासस्थान मात्र है। मगर, दफ़्तर के बूढ़े क्लार्क करीमखाँ ने मुझे

इस महल में रहने के लिए बार-बार मना किया था। उसने कहा था—'तबीयत हो, दिन में रहियेगा, मगर रात यहाँ हरगिज़ न बिताइयेगा।' मैंने उसकी बात हँसी में उड़ा दी। नौकरों ने कहा कि शाम तक तो वे यहाँ काम पर रहेंगे, पर रात को नहीं रहेंगे। मैंने कहा—तथास्तु। यह मकान इतना बदनाम था कि रात को चोर तक इसमें घुसने की हिम्मत न करते।

पहलेपहल जब मैं इस परित्यक्त पाषाण-प्रासाद में पहुँचा, तो उसकी निर्ज्जनता मेरी छाती पर मानो किसी भयंकर भार की तरह बैठ गई। मुझसे जहाँ तक बनता, बाहर-ही-बाहर रहकर काम-काज से खूब थककर रात को यहाँ लौटता और आते ही सो जाता।

परन्तु, एक सप्ताह भी न बीत पाया होगा कि इस महल के एक विचित्र नशे ने क्रमशः मुझ पर कब्ज़ा करना शुरू कर दिया। मेरी उस अवस्था का वर्णन करना भी कठिन है, और उस बात पर किसी को विश्वास दिलाना तो और भी मुश्किल है। सारे-का-सारा मकान मानो किसी सजीव पदार्थ की तरह मुझे अपने जठरस्थ मोह-रस से धीरे-धीरे पचाने लगा।

शायद इस मकान में घुसने के साथ ही उसकी प्रक्रिया शुरू हो गई थी,—पर मैंने जिस दिन सचेतन दशा में पहले-पहल उसका सूत्रपात अनुभव किया, उस दिन की बातें मुझे स्पष्ट याद हैं।

गरमियों के दिन थे, बाज़ार ढीला था; मेरे हाथ में विशेष काम-काज भी न था। सूर्यास्त के कुछ पहले मैं उस नदी-तट के घाट के नीचे की सीढ़ियों पर आराम-कुरसी पर बैठा विश्राम कर रहा था। नदी उन दिनों सूख-सी गई थी,—उस पार का विस्तीर्ण बालू-तट संध्या की आभा से रंगीन हो उठा था—इस पार घाट की सीढ़ियों के नीचे स्वच्छ उथले पानी में पत्थर की गोल-गोल बटैयाँ चमक रही थीं। उस दिन कहीं भी ज़रा नाम को हवा तक न थी। पास के पहाड़ी जंगल से वन-तुलसी, पुदीना और सौंफ की उठती हुई सुगन्धि ने स्थिर आकाश को भाराक्रान्त कर रखा था।

सूर्य जब गिरि-शिखर की ओट में छिप गया, तो चट से दिवस की नाट्यशाला में मानो कोई दीर्घ छाया-यवनिका पड़ गई;—यहाँ पर्वत का व्यवधान होने से सूर्यास्त के समय प्रकाश और अन्धकार का सम्मिलन देर तक नहीं ठहरता। घोड़े

पर सवार होकर कहीं घूम आने के लिए उठना ही चाहता था कि इतने में सीढ़ियों पर किसी की पग-ध्वनि सुनाई दी। पीछे की ओर मुड़कर देखा—कोई नहीं!

कानों को भ्रम हो गया होगा समझकर मैं मुड़कर जो बैठा तो एक साथ बहुत-सी पग-ध्वनियाँ सुनाई दीं—जैसे बहुत-सी सखियाँ मिलकर दौड़ती-फुदकती हुई उतर रही हों। कुछ भय के साथ एक अपूर्व पुलक मेरे सारे अंगों में व्याप्त हो गई। यद्यपि मेरे सामने कोई भी मूर्त्ति न थी, फिर भी स्पष्ट प्रत्यक्षवत् मालूम होने लगा कि इस ग्रीष्म की संध्या में प्रमोद-चंचल तरुणियों का एक झुंड नदी के पानी में नहाने आ रहा है। यद्यपि इस संध्या के समय निस्तब्ध पर्वत के नीचे, नदी-तट पर, निर्जन प्रासाद में, कहीं भी कोई शब्द नहीं हो रहा था, फिर भी मानो मैंने स्पष्ट सुना—निर्झर की सहस्र-धारा की तरह कौतूहलपूर्ण कल-हास्य करती हुई, एक दूसरे का तेजी से पीछा करती हुई, स्नानार्थिनी तरुणियाँ ठीक मेरे बगल से निकल गईं। किसी ने मेरी तरफ देखा तक नहीं! जैसे वे मेरे लिए अदृश्य हों, और मैं भी उनके लिए तथैव च। नदी पूर्ववत् स्थिर थी, पर मेरे सामने स्पष्ट मालूम होने लगा—स्वच्छतोया का अगभीर जल-स्रोत एकसाथ बहुत-सी वलय-झंकृत बाहुओं से विक्षुब्ध हो उठा। हँस-हँसकर सखियाँ एक दूसरे पर पानी उछालने लगीं और तैरनेवालियों के चंचल पदाघातों से जल-बिन्दुराशि मोतियों की तरह शून्य में बिखरने लगी।

मेरे हृदय में एक प्रकार का कम्पन शुरू हो गया; वह उत्तेजना या भय के कारण था, या आनन्द के कारण, या कौतूहल से—ठीक नहीं कह सकता। बड़ी इच्छा होने लगी कि अच्छी तरह देखूँ; पर सामने देखने को कुछ था ही नहीं। मालूम हुआ कि अच्छी तरह कान लगाकर सुनने से उनकी सभी बातें स्पष्ट सुनाई देंगी; पर एकाग्र चित्त से कान लगाकर सुनने पर भी, सिर्फ जङ्गली झींगुरों की झनकार ही सुनाई दी। मालूम होने लगा—ढाई सौ वर्ष पहले की काली यवनिका ठीक मेरे सामने लटक रही है—डरते-डरते जरा-सा एक कोना उठाकर भीतर देखा—शायद वहाँ बड़ी-भारी सभा लगी हुई थी; पर गाढ़े अन्धकार में कुछ दिखाई तो देता नहीं।

सहसा उमस को तोड़ती हुई तेजी से सनसनाती हुई हवा चलने लगी—सुस्ता का स्थिर जल देखते-देखते अप्सरा के केशदाम की तरह कुंचित हो उठा, और संध्या-

छाया से आच्छन्न समस्त वनभूमि एक क्षण में सहसा मर्मर-ध्वनि के साथ मानो दुःस्वप्न से जाग उठी। चाहे स्वप्न समझो या सत्य,—ढाई सौ वर्ष पहले के अतीत क्षेत्र से प्रतिफलित होकर मेरे सामने जो एक अदृश्य मरीचिका अवतीर्ण हुई थी, वह क्षण में न जाने कहाँ विलीन हो गई। जो मायामयी तरुणियाँ मेरे बिलकुल नज़दीक से—देह-हीन द्रुत पदों से—शब्द-हीन उच्च कलहास्य के साथ दौड़ती-फुदकतीं हुई सुस्ता नदी के पानी में कूद पड़ी थीं, वे फिर पानी से उठकर अपने भीगे अंचलों को निचोड़ती हुई मेरे पास से वापस नहीं गईं। हवा जिस तरह गन्ध को उड़ा ले जाती है, उसी तरह वसन्त के एक निःश्वास में वे भी उड़कर न जाने कहाँ चली गईं!

तब, मुझे बड़ी आशंका होने लगी कि कहीं अकेला पाकर अकस्मात् सिर पर कवितादेवी तो नहीं सवार हो गई! बेचारा रूई की चुंगी वसूल करके किसी तरह अपनी गुज़र करता हूँ, सत्यानासिनी कहीं मेरा खातमा करने तो नहीं आई? सोचा—अच्छी तरह भोजन करना चाहिये, खाली पेट में ही सब तरह के दुरारोग्य आ धमकते हैं। मैंने अपने रसोइये को बुलाकर उसे खूब घी और मसाले-सुगन्धियाँ मिलाकर मुग़लई खाना बनाने का हुक्म दिया।

दूसरे दिन सवेरे, कल की सारी घटनाएँ बिलकुल हास्यजनक मालूम होने लगीं। खा-पीकर प्रसन्नचित्त से, साहबों की तरह हैट कोट पहनकर अपने हाथ से टमटम हाँकता हुआ अपने काम पर चला गया। उस दिन त्रैमासिक रिपोर्ट लिखनी थी, इसलिए देर से घर लौटने की बात थी। मगर शाम होते-न-होते कोई मुझे मकान की ओर खींचने लगा। कौन खींचने लगा, पता नहीं; पर ऐसा मालूम हुआ कि अब देर करना ठीक नहीं। भीतर से मन कहने लगा—सब बैठी होंगी। रिपोर्ट अधूरी छोड़कर हैट उठाया और उसी समय संध्या-धूसर तरुच्छाया से आच्छन्न निर्जन पथ को रथ-चक्र के शब्द से चकित करता हुआ अपने उस अन्धकारमय शैलान्तवर्ती निस्तब्ध विशाल प्रासाद की ओर चल दिया।

सीढ़ियों के ऊपर का सामनेवाला दीवानखाना काफ़ी बड़ा था। उसमें काफ़ी ऊँचे और बड़े-बड़े स्तम्भों की तीन पंक्तियाँ हैं, जिन पर सुदृश्य चित्रकारी-युक्त मेहराबदार छत है। वह विशाल कमरा अपनी गम्भीर शून्यता से दिन-रात भाँय-

भाँय किया करता था। उस दिन सन्ध्या का प्रारम्भ होने पर भी, बत्ती नहीं जलाई गई थी। दरवाजा ठेलकर ज्यों ही मैं उस कमरे में घुसा, वैसे ही मालूम हुआ कि वहाँ यकायक बड़ी भारी भगदड़-सी शुरू हो गई—जैसे सभा भंग करके चारों तरफ़ के दरवाज़ों और खिड़कियों से—जहाँ जिसको राह मिली—सब भाग खड़ी हुईं। क्षण में फिर वही सूना का सूना! मैं कहीं किसी को न देखकर दंग रह गया। सारा शरीर एक प्रकार के आवेश से रोमांचित हो उठा। बहुत दिनों की लुप्तावशिष्ट तेल-फुलेल और अतरों की मृदु सुगन्धि मेरी नाक में प्रवेश करने लगी। मैं उस दीप-हीन जल-हीन विशाल कमरे के प्राचीन प्रस्तर-स्तम्भों के बीच खड़ा-खड़ा सुन रहा था—झरझर शब्द करता हुआ फव्वारे का पानी सफेद संगमरमर पर पड़ रहा है; सितारों से क्या सुर निकल रहा था, समझ न सका। कहीं स्वर्ण-भूषणों की झंकार, कहीं नूपरों की छमछम, कभी विशाल घड़ियाल का प्रहर-सूचक नाद, बहुत दूर पर नौबत की मृदु रागिनी, हवा से झूमते हुए बड़े-बड़े स्फटिक-निर्मित झाड़ों के लटकनों की टुनटुन ध्वनि, बाहर के बरामदों से बुलबुलों का गान, बग़ीचे से पालतू सारसों के बोल,—सब ने मिलकर मानों मेरे चारों तरफ किसी प्रेतलोक की रागिनी छेड़ दी थी।

मेरे ऊपर एक तरह की मोह-माया छा गई। मालूम होने लगा—संसार में यह अस्पृश्य अगम्य अवास्तव घटना ही एकमात्र सत्य है और सब कुछ मिथ्या-मरीचिका है। मैं अपने को बिलकुल भूल गया—अर्थात् मैं श्रीयुत अमुक हूँ, अमुक महाशय का ज्येष्ठ पुत्र हूँ, और साढ़े चार सौ रुपये मासिक वेतन पानेवाला चुंगी का दारोगा हूँ और कोट-पैन्ट पहनकर टमटम पर सवार होकर रोज़ दफ़्तर जाया करता हूँ,—यह सब मेरे लिए महज़ मज़ाक की, बिलकुल झूठी, बे-सिर-पैर की बातें मालूम होने लगीं। मैं उस विशाल निस्तब्ध अन्धकार-पूर्ण सभागृह में खड़ा-खड़ा ज़ोर से ठहाका मारकर हँस पड़ा।

इतने में मेरा मुसलमान चपरासी जलता हुआ केरोसिन का लैम्प हाथ में लिये घर में घुसा। उसने मुझे पागल समझा या नहीं, मैं नहीं कह सकता; पर उसी क्षण मुझे याद आया कि मैं स्वर्गीय अमुकचन्द्र का ज्येष्ठ पुत्र श्रीयुत अमुकनाथ हूँ; और यह भी सोचने लगा कि संसार के भीतर या बाहर कहीं भी अमूर्त फव्वारा हमेशा झरता है या नहीं और अदृश्य उँगलियों के आघात से किसी

मायामयी वीणा से अनन्त रागिनी ध्वनित होती है या नहीं ; इसे तो हमारे महाकवि और कविवर ही कह सकते हैं ; पर इतना तो निश्चय और पूर्ण सत्य है कि मैं भड़ौंच की हाट में रूई की चुंगी वसूल करनेवाला वेतन-भोगी कर्मचारी हूँ । तब तो मैं फिर अपने पूर्व-च्चणों की अद्भुत मोह माया का स्मरण कर, टेबिल के पास लैम्प के सामने अखबार देखता हुआ, मज़े ले-लेकर हँसने लगा ।

फिर अखबार पढ़कर और मुगलई खाना खाकर कोनेवाले अपने उस छोटे-से कमरे में, बत्ती बुझाकर बिस्तर पर पड़ रहा । मेरे सामने की खुली हुई खिड़की से अन्धकार-पूर्ण वन-वेष्टित अरावली पर्वत-शिखर के ऊपर एक जाज्ज्वल्यमान नक्षत्र सहस्र कोटि योजन दूर आकाश से—इस अति तुच्छ कैम्प खाट पर पड़े हुए श्रीमान् चुंगी दारोगा की ओर एकटक देख रहा था,—मैं उसकी उस उज्ज्वल तीव्र दृष्टि से विस्मय और कौतुक अनुभव करता हुआ कब सो गया, मुझे पता नहीं । कितनी देर तक सोता रहा, सो भी नहीं जानता । यकायक मैं चौंककर जाग उठा ;—कमरे में कोई शब्द हुआ हो या कोई अचानक घुस आया हो, सो बात नहीं । अन्धकारमय पर्वत-शिखर के ऊपर जो नक्षत्र चमक रहा था, वह अस्त हो चुका था । और कृष्ण-पक्ष का क्षीण चन्द्रालोक अनधिकार प्रवेश के संकोच से म्लान होकर मेरी खिड़की से प्रवेश कर रहा था ।

भीतर मुझे कोई दिखाई नहीं दिया ; फिर भी मानो मुझे स्पष्ट मालूम हुआ कि कोई आकर मुझे अपने कोमल कर-स्पर्श से धीरे-धीरे हिला रही है । मैं जागकर बैठ गया, तो देखा कि वह मुह से कुछ न कहकर सिर्फ अपनी अँगूठियों से चमकती हुई पाँचों उँगलियों से इशारा करके अत्यन्त सावधानी से अपने पीछे-पीछे चले आने का आदेश दे रही है ।

मैं बहुत ही आहिस्ता से उठा । यद्यपि उस सैकड़ों कक्ष-प्रकोष्ठमय, गुरु-गम्भीर शून्यतामय, निद्रित ध्वनि और सजग प्रतिध्वनिमय, विशाल प्रासाद में मेरे सिवा और कोई भी न था, फिर भी कदम-कदम पर यह दहशत होने लगी कि कहीं कोई जाग न जाय । उस प्रासाद के अधिकांश कमरे बन्द रहते थे, और उन कमरों में मैं कभी गया भी नहीं था ।

उस रात्रि के अन्धकार में हौले-हौले पैर रखता हुआ, अपनी साँस पर पूरा संयम रखता हुआ, उस अदृश्य आह्वान-कारिणी के पीछे-पीछे मैं कहाँ जा रहा था,

आज भी उसे मैं स्पष्ट नहीं समझा सकता। कितने संकीर्ण अन्धकार-पूर्ण मार्ग, कितने लम्बे-चौड़े बरामदे, कितने गम्भीर निस्तब्ध दीवानखाने, कितनी छोटी-छोटी बन्द कोठरियाँ पार करता हुआ जाने लगा, उसका कोई ठिकाना है!

अपनी उस अदृश्य दूती को यद्यपि मैंने अपनी आँखों से नही देखा, फिर भी उसकी मूर्ति मेरे मन में अगोचर न थी। ईरानी तरुणी थी वह, ढीली आस्तीनों में दूधिया संगमरमर-जैसे उसके कठिन कोमल गोल-मटोल हाथ दिखाई दे रहे थे, माथे पर टोपी के किनारे से उसके कोमल गुलाबी मुखड़े पर झीने कपड़े की एक नक़ाब पड़ी हुई थी, कटिबन्ध में एक बाँकी छुरी बँधी थी।

मुझे ऐसा मालूम हुआ जैसे 'अलिफ़-लैला' की हजार रातों में से कोई एक रात आज उपन्यास-लोक से यहाँ उड़ आई हो। जैसे मैं अन्धकारमय निशीथ में सोते हुए, बगदाद के दीप-हीन संकीर्ण मार्ग से किसी संकट-पूर्ण अभिसार के लिए यात्रा कर रहा हूँ।

अन्त में मेरी दूती एक घोर नीले रंग के परदे के सामने जाकर सहसा ठिठक-कर खड़ी हो गई, और नीचे की ओर उँगली का इशारा करके कुछ दिखाने लगी। नीचे कुछ भी न था, फिर भी मेरे हृदय का खून जमकर बर्फ हो गया। मुझे साफ़ मालूम होने लगा—उस परदे के सामने ज़मीन पर कमख़ाब की पोशाक पहने एक भीषण हबशी खोजा, गोद में नंगी तलवार लिये, दोनों पैर फैलाये बैठा ऊँघ रहा है। दूती अत्यन्त लघु-गति से उसकी टाँगों को लाँघकर परदे के पास पहुँची और धीरे से उसने उसका एक कोना उठाया।

भीतर का थोड़ा-सा हिस्सा दिखाई दिया; देखा—खास फ़ारस का बना बढ़िया गलीचा बिछा हुआ है। तख्त के ऊपर कौन बैठा है, दिखाई नहीं दिया, सिर्फ़ केशरिया रंग का ढीला पायजामा और उसके नीचे जरीदार जूतियाँ पहने छोटे-छोटे दो सुन्दर चरण गुलाबी मखमल के आसन पर लापरवाही से पड़े दिखाई दिये। फ़र्श पर एक बगल से, एक नीलाभ स्फटिक-पात्र में कुछ सेब, नाशपाती, नारंगी और अंगूरों के गुच्छे सजे हुए थे; उसके पास ही एक छोटा-सा प्याला और स्वर्णाभ मदिरा से भरी हुई काँच की सुराही किसी आसन्न अतिथि के लिए प्रतीक्षा कर रही थी। भीतर से एक प्रकार की अपूर्व सुगन्धि-युक्त धूप का मादक धुआँ आ-आकर मुझे विह्वल करने लगा।

मैंने काँपते हुए हृदय से ज्यों-ही उस खोजे की टाँगें लाँघकर आगे बढ़ना चाहा, त्यों-ही वह चौंककर जाग उठा, उसकी गोद में पड़ी हुई नंगी तलवार झन्न-से संगमरमर के फ़र्श पर गिर पड़ी।

सहसा एक विकट चीत्कार सुनकर मैं भी चौंक पड़ा। आँखें खुलीं तो देखा—अपनी ही उस कैम्प-खाट पर मैं पसीने से तर-बतर हुआ बैठा हूँ। भोर के प्रकाश से कृष्ण-पक्ष का खंड-चन्द्र जागरण क्लिष्ट रोगी की तरह पीला पड़ गया है और अपना वह पागल मेहरअली अपनी प्रात्यहिक प्रथा के अनुसार पौ फटते ही सुनसान सड़क पर 'दूर हो!' 'दूर हो!' 'सब झूठा है!' 'सब झूठा है!' चिल्लाता हुआ निकल गया।

इस तरह 'अलिफ़-लैला' उपन्यास की एक रात अकस्मात् ख़तम हो गई, मगर अब भी एक हज़ार रातें और बाक़ी हैं!

मेरे, दिन के साथ रात का बड़ा भारी विरोध उठ खड़ा हुआ। दिन को श्रान्त-क्लान्त शरीर लेकर काम करने जाता और शून्य-स्वप्नमयी मायाविनी रात्रि को अभिशाप देता रहता,—और फिर शाम होते ही अपने दिन के कार्य-बद्ध अस्तित्व को अत्यन्त तुच्छ, बिलकुल झूठा और महज़ मज़ाक समझने लगता।

शाम के बाद, मैं एक अपूर्व नशे के जाल में अपने आप विह्वल होकर उलझ जाता, सैकड़ों वर्ष पहले के किसी एक अलिखित इतिहास का और कोई अपूर्व व्यक्ति हो जाता। तब फिर विलायती तंग कोट और चुस्त पैन्ट मुझे भद्दा लगने लगता। तब मैं सिर पर लाल मखमल की टोपी, ढीला पायजामा, फूलदार क़बा और रेशम का लम्बा चोग़ा पहनकर रंगीन रूमाल में अतर डालकर बड़ी दिलचस्पी के साथ अपने को तैयार करता, और सिगरेट फेंककर गुलाबजल-पूर्ण लम्बी सटकवाला बड़ा-सा पेचवान लेकर ऊँची गद्दीदार मसनद पर ऐसे बैठ जाता, जैसे कोई प्रेमी रात को किसी अपूर्व प्रिय-सम्मिलन के लिए परम आग्रह के साथ तैयार बैठा हो।

उसके बाद, अन्धकार जितना ही घनघोर होता जाता, उतनी ही, न जाने कैसी-कैसी, अद्भुत घटनाएँ होती रहतीं, जिनका वर्णन नहीं किया जा सकता। ठीक जैसे किसी रहस्यपूर्ण विचित्र कहानी के कुछ फटे हुए पन्ने वसन्त की आकस्मिक हवा से, इस विशाल प्रासाद के चित्र-विचित्र कमरों में, उड़े-उड़े फिरते हों। कुछ

पन्नों तक सिलसिला मिल जाता, फिर उसके बाद का हिस्सा ढूँढ़े मिलता नहीं। मैं भी उन उड़ते हुए पन्नों का पीछा करता हुआ सारी रात कमरे-कमरे और कोठरी-कोठरी में मारा-मारा फिरता रहता।

इस खण्ड-स्वप्न के भँवर में—कभी हिना की खुशबू, कभी सितार की झंकार और कभी सुरभि-जल-शीकर मिश्रित पवन की हिलोरों में अपनी मानस-नायिका को क्षण-क्षण में विद्युत-शिखा की तरह चमकती हुई देख लिया करता। मेरी वह मानस-अभिसारिका केशरिया रंग का पायजामा पहने, अपने दूधिया गुलाबी कोमल पैरों में ज़रीदार नुकीली जूतियाँ डाले, अपने पीनोन्नत पयोधरों पर जरी की बेल-बूटेदार कंचुकी कसे, माथे पर सिन्दूरी रंग की शानदार टोपी पहने—जिसके सामने लटकती हुई सुनहरी झालर बार-बार उसके शुभ्र ललाट और कपोलों को चूम रही थी—इस घनघोर अन्धकार में बिजली की तरह पल में चमककर फिर उसी में छिप जाती थी।

उसने मुझे पागल कर दिया था। उसीके अभिसार में—मैं रोज़ रात को निद्रा के रसातल-राज्य में स्वप्न के जटिल मार्ग-युक्त माया-पुरी की गली-गली में, कोठरी-कोठरी में—इधर से उधर भटकता फिरा हूँ!

किसी-किसी दिन शाम को, जब मैं बड़े आईने के दोनों ओर दो बत्तियाँ जलाकर बड़ी दिलचस्पी के साथ अपने को शाहज़ादे की पोशाक में सजाने में मशगूल रहता, तो सहसा देखता कि आईने में मेरे प्रतिविम्ब के बहुत ही पास, क्षण-भर के लिए, उस तरुणी ईरानी की छाया आ खड़ी होती; पल में वह अपनी सुराहीदार गरदन हिलाकर, अपनी बड़ी-बड़ी भौंरे-सी काली आँखों की पुतलियों से सुगम्भीर आवेग और आग्रह के साथ तीव्र वेदना-पूर्ण कटाक्ष करती हुई, लघु ललित नृत्य के साथ अपनी यौवन-पुष्पित देह-लता को तेजी से ऊपर की ओर घुमाती हुई, क्षण में वेदना, वासना और विभ्रम के हास्य-कटाक्ष और भूषण-ज्योति की चिनगारियाँ बरसाती हुई, दर्पण की दर्पण ही में विलीन हो जाती। फिर गिरि-कानन की सम्पूर्ण सुगन्ध को लूटता हुआ पवन का एक निरंकुश उच्छ्वास आता और मेरी दोनों बत्तियों को बुझाकर चला जाता। मैं भी अपना प्रसाधन छोड़-छाड़कर शृंगार-घर के एक कोने में पड़ी हुई अपनी खाट पर जाकर पड़ रहता। मेरा सारा शरीर पुलकित हो उठता, और मैं आँखें मींचकर सोने की कोशिश करता। उस

समय मेरे चारों तरफ़ वह पवनोच्छ्वास—अरावली गिरि-कुंजों का वह सम्पूर्ण मिश्रित सौरभ मानो किसी अतृप्त प्रेम के बहुत बहुत प्यार, अनेकानेक चुम्बन और कोमल कर-स्पर्श से उस निर्जन अन्धकार को भर देता और वहीं-का-वहीं चक्कर काटता रहता। अपने कानों के आस-पास मुझे आकर्षक कल-गुंजन सुनाई देता, मेरे ललाट पर सुरभित निःश्वास आ-आकर लगता, और बार-बार किसी मृदु-सौरभ रमणी का सुकोमल दुपट्टा आ-आकर मेरे कपोलों पर पड़ता—उसकी सुरसुराहट से मैं बेचैन हो-हो उठता। धीरे-धीरे यह मोहिनी सर्पिनी अपने मादक वेष्टन से मेरे सारे अंगों को कस के बाँध डालती, और मैं खुर्राटे लेता हुआ मदहोश हो गहरी नींद में सो जाता।

एक दिन, शाम होने के पहले ही घोड़े पर सवार होकर हवाखोरी के लिए कहीं निकल जाने का मैंने निश्चय कर लिया; पीछे से मालूम नहीं कौन मुझे मना करने लगा—मगर फिर भी, मैंने उसकी एक न मानी। एक खूँटी पर मेरा साहबी हैट और कोट टँगा था, मैंने उन्हें उठाकर ज्योंही पहनना शुरू किया, त्योंही सुस्ता नदी की रेती और अरावली पहाड़ियों की सूखी पत्तियों की ध्वजा फहराता हुआ एक ज़ोर का बवंडर अचानक उठ खड़ा हुआ और मेरे उस कोट-पैन्ट-हैट को छीनकर न-जाने कहाँ उड़ा ले गया; और साथ ही एक अत्यन्त मधुर कल-हास्य उस तूफ़ान के साथ घूमता हुआ, कौतुक के हर एक पर्दे पर उँगलियाँ रखता हुआ, उच्च से उच्चतर सप्तक पर चढ़ता हुआ सूर्यास्तलोक के पास जाकर विलीन हो गया।

उस दिन फिर मेरा घोड़े पर घूमना न हो सका, और उसके दूसरे दिन से तो फिर मैंने साहबी हैट-कोट पहनना हमेशा के लिए छोड़ ही दिया।

फिर, उस दिन आधी रात को अकस्मात् मैं सोते से उठकर बैठ गया, सुना—मानो कोई छाती फाड़-फाड़ के फूट-फूटकर रो रही है—मानो ठीक मेरी खाट के नीचे, जमीन के भीतर, इस विशाल प्रासाद की पत्थर की नींव के नीचे, किसी आर्द्र अन्धकार-पूर्ण क़ब्र के भीतर से रो-रोकर कह रही हो—तुम मुझे इस कठिन माया, इस गहरी निद्रा, इस निष्फल स्वप्न के सारे दरवाज़े तोड़कर, अपने घोड़े पर चढ़कर, अपनी छाती से चिपटाकर, जंगल के भीतर से, पहाड़ियों के ऊपर से, नदी पार होकर, अपने सूर्यालोकित संसार में ले चलो! मेरा उद्धार करो!

मैं कौन हूँ ? कैसे मैं तुम्हारा उद्धार करूँ ? मैं इस घूमते हुए परिवर्तनशील स्वप्न-प्रवाह में से किस डूबती कामना-सुन्दरी को खींचकर किनारे लगाऊँ ? कब थीं, कहाँ थीं—हे दिव्य-रूपिणी ! तुम किस शीतल झरने के तट पर, खर्जूर-कुंज की छाया में, किसी गृह-हीना मरुवासिनी की कोख में पैदा हुई थीं ? तुम्हें कौन बद्दू डाकू, वनलता से फूल की कली की तरह माँ की गोद से तोड़कर, विद्युत्गामी घोड़े पर चढ़ाकर, जलते हुए रेगिस्तान को पार करके, किस राजपुरी की दासी-हाट में बेचने के लिए ले गया था ? वहाँ किस बादशाह का कौन-सा खैरख़्वाह ख़िदमतगार तुम्हारी इस नव-विकसित सलज्ज-कातर यौवन-शोभा को देखकर, सोने के सिक्कों के बदले तुम्हें खरीदकर, समुद्र पार हो, सोने की शिविका में बिठाकर तुम्हें अपने प्रभु के अन्तःपुर में भेंट चढ़ा गया था ? वहाँ, वह कैसा इतिहास था ! उस सारंगी के संगीत, नूपुरों की झंकार और छलकती हुई शीराज़ी सुवर्ण-मदिरा के बीच-बीच में चमचमाती हुई कटारों की झलक, विष की ज्वाला, कटाक्षों की चोट ! ओफ़ ! कैसा असीम, कैसा ऐश्वर्य, कैसा अनन्त कारागार था वह ! दोनों ओर दो दासियाँ अपनी चूड़ियों में हीरे के नगों को चमकाती हुईं चँवर डुला रही हैं ; शाहंशाह बादशाह उनके शुभ्र चरणों पर—मानिक-मोतियों से जड़ी हुई जूतियों के पास—लोट रहे हैं ;—और बाहर के द्वार पर यमदूत-जैसे हबशी, देवदूत के समान पोशाक पहने, हाथ में नंगी तलवार लिये खड़े हैं ! उसके बाद, उस रक्त-कलुषित ईर्ष्या-फेनिल षड़यन्त्र-संकुल भीषणोज्ज्वल ऐश्वर्य-प्रवाह में बहती हुई, मरुभूमि की पुष्प-मंजरी तुम, किस मृत्यु-लोक में अवतीर्ण हुई थीं—किस निष्ठुरतर महिमा-तट पर फेंक दी गई थीं—हे दिव्यरूपिणी ! कब थीं, कहाँ थीं, कहाँ हो तुम ?

इतने में सहसा उस पागल मेहरअली का चीत्कार कानों में पड़ा—'दूर रहो, दूर रहो !' 'सब झूठा है !' आँखें खोलकर देखा—सवेरा हो गया है ; चपरासी ने डाक लाकर मेरे हाथ में दी, और बावर्ची आकर पूछने लगा—आज क्या खाना बनेगा ?

मैंने कहा—बस, अब इस मकान में रहना नहीं हो सकता। उसी दिन मेरा सब असबाब उठकर दफ्तर पहुँच गया। दफ्तर का बुड्ढा क्लार्क करीम खाँ मुझे देखकर कुछ मुसकराया। मैं उसकी इस मुसकराहट से नाराज़-सा हुआ, पर बिना कुछ जवाब दिये अपना काम करने लगा।

ज्यों-ज्यों शाम क़रीब आने लगी, त्यों-त्यों मैं अनमना-सा होने लगा--मालूम होने लगा कि अभी कहीं जाना है--रूई के हिसाब जाँचने का काम मुझे नितान्त अनावश्यक मालूम हुआ, निज़ाम की निज़ामत भी मेरे लिए ख़ास कोई ज़रूरी चीज़ नहीं मालूम हुई--जो कुछ मौजूद है, मेरे चारों तरफ जो कुछ चल-फिर रहा है, मेहनत कर रहा है, खा-पी रहा है, सब कुछ मुझे अत्यन्त दीन, अर्थहीन, अकिंचित्कर मालूम होने लगा।

मैं कलम फेंककर, भारी-भरकम खाते-बही बन्द करके, फौरन उठ खड़ा हुआ और टमटम पर बैठकर चल दिया। देखा--टमटम ऐन गोधूलि के समय पर खुद-बखुद उस पाषाण-प्रासाद के द्वार पर जाकर खड़ी हो गई। जल्दी-जल्दी सीढ़ियाँ तै करता हुआ मैं भीतर घुसा।

आज सब-कुछ निस्तब्ध है। महल की सब की सब अँधेरी कोठरियाँ जैसे मुझसे सख़्त नाराज़ होकर मुँह फुलाये पड़ी हों। अनुताप और पश्चात्ताप से मेरा हृदय ऊपर को आने लगा; मगर किससे कहूँ, किससे हाथ जोड़कर माफ़ी मागूँ, कोई भी तो नहीं! मैं शून्य हृदय से अँधेरी कोठरियों में भटकने लगा। जी चाहने लगा--एक सितार हाथ में लेकर किसी को सुनाने के लिए कुछ गाऊँ; और कहूँ कि 'हे वह्नि! जो पतंगा तुम्हें छोड़कर भाग जाने की कोशिश कर रहा था, वह फिर जल मरने के लिए आया है! अबकी बार उसे माफ़ कर दो, उसके दोनों पंख जला डालो, भस्म कर डालो!'

एकाएक ऊपर से मेरे ललाट पर आँसू की दो बूँदें गिरीं। उस दिन अरावली पर्वत के शिखर पर घनघोर बादल मँडरा रहे थे। अन्धकारमय अरण्य और स्वच्छतया का स्याही-सा स्याह पानी किसी भीषण की प्रतीक्षा में स्थिर था। जल-स्थल-आकाश सहसा चौंक पड़ा; और अकस्मात् एक विद्युद्दन्त-विकसित तूफ़ान जंजीर तोड़कर भागे हुए मदोन्मत्त पागल की तरह मार्ग-हीन सुदूर वन में से आर्त-स्वर में चीत्कार करता हुआ दौड़ा चला आया। प्रासाद के बड़े-बड़े कमरे अपने सारे के सारे दरवाजे-जँगले धुन-धुनकर, तीव्र वेदना से पछाड़ खा-खाकर, फूट-फूटकर रोने लगे।

आज नौकर-चाकर सब दफ़्तर वाले मकान में ही थे, यह बत्ती जलानेवाला भी कोई न था। उस मेघाच्छन्न अमावस्या की रात्रि में, महल के भीतर के कसौटी

से काले अन्धकार में, मैं बिलकुल स्पष्ट अनुभव करने लगा—एक तरुणी रमणी पलंग के नीचे गलीचे पर औंधी पड़ी हुई अपनी दोनों मुट्ठियाँ बाँध-बाँधकर अपने बिखरे हुए रूखे बालों को नोच-नोचकर फेंक रही है, उसके गोरे ललाट से ताज़ा गरम खून फूट-फूटकर बह रहा है, कभी वह शुष्क तीव्र अट्टहास्य से 'हाः हाः' करके हँस पड़ती है, कभी फूट-फूटकर रोने लगती है, कभी दोनों हाथों से छाती की कंचुकी फाड़-फाड़कर उघरी हुई छाती पीटने लगती है—और खुली हुई खिड़कियों से गरजती हुई तूफ़ानी हवा और मूसलाधार वर्षा की बौछार आ-आकर उसके उत्तप्त शरीर को अभिषिक्त कर देती है।

तमाम रात न तो आँधी थमी और न रोना ही बन्द हुआ। मैं निष्फल परिताप से अनुतप्त होकर अँधेरी कोठरियों में भटकता फिरा। कहीं किसी का पता न चला, सान्त्वना दूँ तो किसे दूँ? यह प्रचंड आहत अभिमान किसका है? यह अशान्त मनस्ताप, यह आन्तरिक शोक कहाँ से उठ रहा है?

पागल मेहरअली चिल्ला उठा—'दूर रहो!' दूर रहो!' 'सब झूठा है, सब झूठा है!'

देखा कि भोर होगया है, और मेहरअली इस घोर तूफ़ान में—ऐसे आँधी-मेह में भी—नियमानुसार इस क्षुधित पाषाण-प्रासाद की प्रदक्षिणा देता हुआ अपना अभ्यस्त चीत्कार कर रहा है। यकायक ख़याल आया—शायद यह मेहरअली भी, मेरी ही तरह, किसी समय कम्बख्ती का मारा इस महल में आ ठहरा होगा, और अब पागल होकर बाहर निकल भागने पर भी, इस पाषाण-राक्षस की मोह-माया से आकृष्ट हो-होकर रोज़ सवेरे इसकी प्रदक्षिणा करने आया करता है।

मैं उसी वक्त, उसी आँधी-मेह में, दौड़ा-दौड़ा उस पागल के पास पहुँचा; उससे पूछा—मेहरअली, क्या झूठा है रे?

मेरी बात का कोई जवाब न देकर, जोर के धक्के से मुझे गिराकर, अजगर के ग्रास के समान खिंचकर घूमते हुए मोहाविष्ट पक्षी की तरह चीत्कार करता हुआ, वह मकान के चारों तरफ घूमने लगा। सिर्फ, जी-जान से अपने को सावधान रखने के लिए बार-बार वह यही चिल्लाने लगा—दूर रहो, दूर रहो! सब झूठा है, सब झूठा है!

मैं उस आँधी-मेंह में पागल की तरह घबराया हुआ दफ्तर पहुँचा, और करीम खाँ को पास बुलाकर मैंने उससे पूछा—इसके मानी क्या हैं, मुझे साफ-साफ बताओ?

बुड्ढे ने जो-कुछ कहा, उसका मतलब यह है---किसी समय उस प्रासाद में असंख्य वासनाएँ और उन्मत्त सम्भोग की शिखाएँ लहरें लिया करती थीं---उन सब चित्त-दाहों से, उन सब निष्फल कामनाओं के अभिशाप से इस पाषाण-प्रासाद का प्रत्येक पाषाण-खंड अब तक क्षुधार्त और तृष्णार्त बना हुआ है, सजीव मनुष्य पाते ही उसे लालायित पिशाच की तरह खा डालना चाहता है। आज तक जो-कोई, जितने भी, इस प्रासाद में तीन रात रहे हैं, उनमें से सिर्फ एक मेहरअली ही पागल होकर बाहर निकल पाया है; आज तक और कोई भी इसके ग्रास से नहीं बचा।

मैंने पूछा---मेरे उद्धार का क्या कोई उपाय नहीं है?

बुड्ढे ने कहा—सिर्फ़ एक ही तरकीब है, जो कि बहुत ही मुश्किल है। सो तुम्हें बताये देता हूँ,—मगर उससे पहले उस गुलबाग़ की एक ज़रख़रीद ईरानी बाँदी का इतिहास कहना ज़रूरी है। वैसी आश्चर्यजनक और वैसी दिल दहलानेवाली दुर्घटना शायद दुनिया में पहले कभी न हुई होगी!

× × × ×

इतने में कुलियों ने आकर खबर दी—गाड़ी आ रही है, हुज़ूर!

इतनी जल्दी? झटपट बिस्तर बाँधते-बाँधते गाड़ी आ पहुँची। उस गाड़ी के फर्स्ट-क्लास कम्पार्टमेन्ट से तत्काल ही सोते से उठा हुआ एक अँगरेज़ खिड़की में से गरदन निकालकर स्टेशन का नाम पढ़ने की कोशिश कर रहा था, हमारे सहयात्री मित्र को देखते ही वह 'हैल्लो!' कहकर चिल्ला उठा, और उन्हें अपने डब्बे में बुला लिया। हम सब एक सेकेण्ड-क्लास डब्बे में लाए गये। फिर उन बाबू साहब ।' कुछ पता न लगा, कहानी का आखिरी हिस्सा भी न सुन सके।

मैंने कहा—देखा हज़रत, हम लोगों को बेवकूफ बनाकर कैसा चकमा दे गया! शुरू से लेकर आखीर तक सारा किस्सा मन-गढ़न्त है।

बस, इसी बहस के कारण अपने थियॉसोफिस्ट मित्र के साथ जन्मभर के लिए विच्छेद हो गया।

फूल की क़ीमत

प्रभातकुमार मुखोपाध्याय

[बँगला सन् १२७९ में बर्दवान ज़िले के धातृग्राम में ननिहाल में प्रभात-कुमार का जन्म हुआ था। कलकत्ता विश्वविद्यालय की शिक्षा समाप्त करके सन् १९०१ ई० में ये बैरिस्टरी पास करने के लिए विलायत गये थे। दारजिलिंग, रंगपूर और गया में बहुत दिनों तक बैरिस्टरी करने के बाद इन्होंने कलकत्ते पहुँच कर 'मानसी ओ मर्मवाणी' नाम की तत्कालीन प्रसिद्ध मासिक-पत्रिका के सम्पादन का भार ग्रहण किया था। इस पत्रिका के प्रधान सम्पादक थे महाराज जगदीन्द्र नाथ राय। छोटी अवस्था से ही साहित्य के प्रति इनका अनुराग था। देश और विदेशों की जानकारी और बहुत से लोगों के संसर्ग से इनका यह अनुराग और भी अधिक पुष्ट हो गया था। प्रत्येक अभिज्ञता के आधार पर ये कहानियाँ और उपन्यास लिखते थे। उपन्यास-साहित्य में यद्यपि इनकी कई उत्कृष्ट रचनाएँ हैं, तथापि प्रभातकुमार प्रधानतः एक गल्प-लेखक के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। सन् १३३८ बँगला में इनकी मृत्यु हुई थी।

गल्प-रचना में प्रभातकुमार अधिकांश में रवीन्द्रनाथ के ही अनुगामी थे। किन्तु रवीन्द्रनाथ की कहानियों में जिस प्रकार जीवन का गम्भीर-पार्श्व अभिव्यक्त हुआ है, उसी प्रकार उसका लघु-पार्श्व प्रभातकुमार में व्यक्त हुआ है। दोनों में मूलतः मुख्य अन्तर यही है। प्रभातकुमार लघु-स्वर की रचना में सिद्ध-हस्त थे। मनुष्य के भिन्न-भिन्न विचार, भिन्न-भिन्न पागलपन, भिन्न-भिन्न शौक़, उसके अन-जान में ही और लोगों की दृष्टि में कितने अधिक हास्यास्पद हो सकते हैं, यह प्रभातकुमार ने बहुत ही निपुणता के साथ दिखलाया है। किन्तु यह रचनाएँ हास्य-रस-प्रधान हैं। इसके अन्दर कोई बहुत बड़ी और गूढ़ व्यंजना नहीं दिखाई देती। अँगरेज़ी में जेरोम की रचनाओं में या बँगला में परशुराम की रचनाओं में जैसी गूढ़ अभिव्यंजना दिखाई देती है, वैसी गूढ़ अभिव्यंजना इनकी रचनाओं में नहीं मिलती। 'रसमयीर रसिकता', 'बलवान जामाता' आदि कहानियों के नाम इसके उदाहरण में रखे जा सकते हैं। प्रभातकुमार ने गम्भीर स्वर की कहानियाँ जो थोड़ी-सी लिखी हैं, उनमें से 'फूलेर मूल्य' नामक गल्प सबसे अधिक उल्लेख-

नीय है। इसमें लेखक ने बहुत ही सुन्दरता से यह दिखाया है कि आचार-व्यवहार और रीति-रवाज में मनुष्यों में ऊपर से देखने में चाहे कितना ही अन्तर क्यों न दिखाई देता हो, लेकिन अन्दर की बृहत्तर वृत्ति के विचार से सभी मनुष्य समान हैं। सुना है कि इस कहानी की घटना बिल्कुल सत्य है।]

फूल की क़ीमत

लन्दन शहर में जगह-ब-जगह निरामिष भोजनालय हैं। मैं एक दिन नैशनल गैलरी में घूमने-फिरने और तसवीरें देखने भालने में थक गया। निश्चित समय पर एक बजा। भूख भी मुझे बहुत मालूम पड़ने लगी। वहाँ से कुछ दूर पर ही, सेन्ट मार्टिन्स लेन में उक्त प्रकार का एक भोजनालय था। मैं धीरे धीरे चलकर वहाँ पहुँचा और भोजनगृह में दाखिल हुआ।

तब तक लन्दन के भोजनालयों में 'लंच' के लिए कुछ अधिक लोगों का समागम नहीं हुआ था। मैंने कमरे में जाकर देखा कि दो-चार भूखे व्यक्ति जहाँ-तहाँ बेतरतीब बैठे हैं। एक टेबुल के सामने बैठकर मैंने दैनिक समाचारपत्र उठा लिया। नम्रमुखी वेट्रेस मेरे सम्मुख खड़ी होकर मेरी फ़रमाइश का इन्तज़ार करने लगी।

मैंने समाचारपत्र से नज़र हटाई और खाद्य-तालिका हाथों में लेकर अपनी आवश्यकतानुसार खाद्य-वस्तुओं के लिए हुक्म दिया। 'धन्यवाद, महाशय—' कहकर द्रुतगामिनी वेट्रेस निःशब्द चली गई।

इसी क्षण, अपने टेबुल से कुछ दूर एक दूसरे टेबुल पर मेरी नज़र पड़ी। देखा, वहाँ एक अंग्रेज़-बालिका बैठी है। मेरी नज़र पड़ते ही उसने अपनी नज़र मेरी ओर से हटा ली। इसके पहले वह बड़े अचम्भे से मुझे देख रही थी।

यह कोई नई बात नहीं थी। कारण, श्वेतदीप में हमारे देह के चमत्कारिक रंग के प्रभाव से जन-साधारण सर्वत्र ही मुग्ध हो जाते हैं और इसलिए हम लोगों पर उनकी सबसे अधिक दृष्टि पड़ती है।

बालिका की उम्र तेरह चौदह साल की होगी। उसके पोशाक से जैसे ग़रीबी प्रकट हो रही थी। उसके बाल पीठ पर इधर-उधर बिखर रहे थे। उसकी आँखें बड़ी-बड़ी ज़रूर थीं, पर उनमें वेदना भरी थी।

उसकी आँखों को बचाकर उसके मुख की ओर कनखियों से मैं चुपचाप ताकने लगा। मेरे भोजन की सामग्री के आते-न-आते वह भोजन कर चुकी। वेट्रेस ने आकर बिल लिख दिया। बाहर जानेवाले दरवाजे के पास ही दफ़्तर है। बिल और मूल्य के लिए वहीं जाना पड़ता है।

बालिका के उठने पर मेरी दृष्टि भी उसका अनुसरण करने लगी। अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही मैंने देखा, बालिका बिल चुकाकर कर्मचारिणी से धीरे-धीरे पूछ रही है—Please miss, यह भला आदमी क्या कोई भारत-निवासी है ?

'मालूम तो ऐसा ही पड़ता है।'

'ये क्या यहाँ बराबर आते हैं ?'

'मालूम नहीं। याद नहीं आता कि इसे कभी और देखा है।'

'धन्यवाद'—कहकर बालिका घूमी और एक बार चकित दृष्टि से देखकर बाहर चली गई।

इस बार मैं विस्मित हो उठा। क्यों ? बात क्या है ? अपने सम्बन्ध में उसका यह कौतूहल देखकर उसके संबंध में भी मुझे कौतूहल होने लगा। भोजन समाप्त कर मैंने वेट्रेस से पूछा—वह बालिका जो वहाँ बैठी थीं, क्या तुम उसे जानती हो ?

'नहीं महाशय, कोई विशेष रूप से तो मैं उसे नहीं जानती। पर प्रति शनिवार को वह यहाँ आकर लंच खाती है। बस, इतना ही मैंने देखा है।'

'तो, शनिवार के सिवा और किसी दिन नहीं आती ?'

'नहीं, और मैंने कभी देखा नहीं।'

'क्या उसके सम्बन्ध में तुम कुछ अनुमान भी नहीं कर सकतीं ?'

'शायद वह किसी दूकान में काम करती है।'

'यह तुमने कैसे समझा ?'

'इसकी आमदनी बहुत थोड़ी है। रोज-रोज लंच के लिए इसे पैसे नहीं रहते। शनिवार को साप्ताहिक वेतन पाती होगी। इसी से एक रोज़ ही आती है।'

यह मुझे सच मालूम पड़ा।

बालिका के सम्बन्ध का कौतूहल मेरे मन से दूर नहीं हुआ। उसने इस प्रकार मेरे बारे में क्यों पूछा ? ऐसा क्या रहस्य है, जिसके लिए उसे मेरे सम्बन्ध

में इतनीं उत्सुकता है ? उसकी वह ग़रीबी-भरी चिन्ता-पूर्ण, कातर दृष्टि मेरे हृदय पर अधिकार करने लगी। अहा, वह बालिका कैसी है ? क्या मेरे द्वारा उसकी कोई भलाई हो सकती है ? रविवार के दिन लन्दन की दूकानें बन्द रहती हैं। अतः सोमवार को प्रातराश करके मैं उस बालिका की खोज में निकल पड़ा। सेन्ट मार्टिन्स लेन के अगल-बगल रास्ते में, ख़ासकर स्ट्रैण्ड में अनेक दूकानों में खोजा, पर कहीं भी वह दिखाई नहीं पड़ी। लन्दन में किसी भी दूकान में जाने पर कुछ-न-कुछ ख़रीदना पड़ता है। *इस प्रकार फालतू नेकटाई, रूमाल, कालर के बटन, पेंसिल और सचित्र पोस्टकार्ड आदि मेरे ओवरकोट की जेब में स्तूपाकार हो उठे। किन्तु बालिका का कहीं भी पता न लगा।

सप्ताह बीत गया। फिर शनिवार आया। मैं फिर उसी निरामिष भोजनालय में पहुँचा। वहाँ देखा कि उसी टेबुल पर बालिका भोजन कर रही है। मैंने उसी टेबुल के पास जाकर उसके सामने की कुर्सी पर बैठकर कहा—Good afternoon !

बालिका ने संकोच के साथ कहा—Good afternoon !

एकाध बात छेड़कर मैंने धीरे-धीरे बातचीत का सिलसिला शुरू कर दिया। बालिका ने पूछा—क्या आप भारत के रहनेवाले हैं ?

---

* ऐसा सिर्फ़ आँखों के लिहाज़ से ही नहीं, बल्कि दया-धर्म के अनुरोध से भी ख़रीदना पड़ता है। लन्दन की हर बड़ी-बड़ी दूकान में पुरुष (Shop walkers) हैं। जिस विभाग में जो ग्राहक जाना चाहें, उस विभाग में उन्हे पहुँचा देना और काम-काज पर साधारण नज़र रखना उनका कर्त्तव्य है। यदि कोई ग्राहक किसी विभाग में सौदा देखकर बिना कुछ ख़रीदे लौट जाता है तो वह Shop walker तत्क्षण दूकान के व्यवस्थापक से रिपोर्ट करता है—'अमुक Miss के विभाग से एक ग्राहक बिना कुछ ख़रीदे लौट गया है।' रिपोर्ट पाकर व्यवस्थापक कर्मचारिणी से इसकी कैफ़ियत तलब करता है। पहले पहल ताक़ीद की जाती है। फिर बार-बार इस प्रकार की रिपोर्ट होने पर जुर्माना किया जाता है और नौकरी भी छूट सकती है। इन Shop girls को वेतन भी कुछ अधिक नही मिलते। अतः चीज पसन्द नहीं होने पर भी उनकी आँखों की उपेक्षा करके ख़ाली हाथ लौट आना ग्राहक के लिए दुःसाध्य है।

'हाँ।'

'मुझे क्षमा करेंगे—तो क्या आप निरामिषभोजी हैं ?'

मैंने उत्तर न देकर पूछा—क्यों, यह आप किस लिए पूछती हैं ?

'मैंने सुना है कि अधिकांश भारतवासी निरामिषभोजी ही होते हैं।'

'तुमको भारत-सम्बन्धी बात कैसे मालूम हुई ?'

'मेरे ज्येष्ठ भाई भारत में सैनिक होकर गये हैं।'

अब मैंने उत्तर दिया—मैं प्रकृततः निरामिषभोजी तो नहीं हूँ। फिर भी बीच-बीच में निरामिष भोजन ज़रूर पसन्द करता हूँ।

यह सुनकर बालिका जैसे कुछ निराश हुई। मालूम हुआ कि उस ज्येष्ठ भ्राता के अतिरिक्त इस बालिका का और कोई पुरुष अभिभावक नहीं है। वह लैम्बेथ में अपनी बूढ़ी विधवा माता के साथ रहती है।

मैंने पूछा—तो क्या तुम्हें अपने भाई के यहाँ से पत्रादि मिलते हैं ?

'जी नहीं, बहुत दिनों से कोई चिट्ठी नहीं आई। इसी से मेरी मा को बहुत चिन्ता है। उनसे लोग कहते हैं कि हिन्दुस्तान में साँप, व्याघ्र और ज्वर बेहद हैं। इसी से उनको भय है कि कहीं मेरे भाई को कुछ भला-बुरा न हो जाय। तो क्या भारत में साँप, व्याघ्र और ज्वर सचमुच बहुत अधिक हैं महाशय ?'

मैंने मुस्कराकर कहा—नहीं। ऐसा होता तो क्या वहाँ आदमी रह सकते ?

बालिका ने एक हल्की-सी दीर्घ निःश्वास छोड़ी। फिर बोली—मा कहती है कि यदि किसी भारतीय से भेंट हो तो सभी बातें खुलासा पूछूँ। इसके बाद बड़ी विनयपूर्ण दृष्टि से वह मेरी ओर देखने लगी। मैंने उसके मन की बात भाँप ली। उसे खुलकर मुझसे अनुरोध करने का साहस नहीं हुआ, फिर भी उसकी इच्छा थी कि मैं उसके साथ उसकी मा के पास चलूँ।

इस दीन, विरह-कातर जननी के साथ भेंट करने की मुझे बहुत व्यग्रता हुई। दरिद्र की कुटिया के प्रत्यक्ष परिचय का अवसर मुझे कभी मिला नहीं था। देख आऊँगा कि इस देशवाले किस प्रकार जीवन व्यतीत करते हैं और किस प्रकार सोचते-विचारते हैं।

मैंने बालिका से कहा—चलो, मैं तुम्हारी मा के पास चलूँगा। अपनी मा से मेरा परिचय करा देना।

इस प्रस्ताव के सुनते ही बालिका के दोनो नेत्र कृतज्ञता से भर आये। उसने कहा—Thank you ever so much. It would be so kind of you. क्या आप अभी चल सकते हैं?

'बड़ी ख़ुशी से।'

'आपका कुछ हर्ज तो न होगा?'

'बिल्कुल नहीं। आज तीसरे पहर का समय सर्वथा मेरा है।'

यह सुनकर बालिका पुलकित हुई। भोजन करके हम दोनो चल पड़े। रास्ते में पूछा—क्या मैं तुम्हारा नाम जान सकता हूँ?

मेरा नाम एलिस मार्गारेट क्लिफर्ड है।

मैंने परिहास के तौर पर कहा—अहा हा,—तो तुम्हीं Alice in Wonderland की एलिस हो?

बालिका अचम्भित रह गई। बोली—सो क्या?

मैं कुछ लजा गया। मैं समझता था कि ऐसी कोई अङ्गरेज़ बालिका नहीं होगी, जिसने Alice in Wonderland नामक अनुपम शिशुरञ्जक पुस्तक को कंठ नहीं कर लिया हो।

मैंने कहा—वह एक चत्मकारपूर्ण पुस्तक है। क्या तुमने पढ़ी नहीं?

'जी नहीं, मैंने तो नहीं पढ़ी।'

'तुम्हारी मा यदि मुझे अनुमति देंगी, तो मैं उसकी एक प्रति तुम्हें उपहार में दूँगा।'

इस प्रकार बात करते-करते हम सेन्ट मर्टिन्स चर्च के पास होकर चेयरिंग क्रास स्टेशन के सामने आ पहुँचे। टेलीग्राफ़-आफ़िस के सामने फ़ुटपाथ पर खड़े होकर मैंने बालिका से कहा—आओ, यहाँ हम वेस्ट मिनिस्टर बस की प्रतीक्षा करें।

बालिका ने कहा—बढ़े चलने में क्या आपको कुछ आपत्ति है।

मैंने कहा—कुछ भी नहीं। पर तुम्हें कुछ कष्ट तो नहीं होगा?

'जी नहीं, मैं तो नित्य ही पैदल जाती हूँ।'

अब यह जानने का अवसर मिला कि वह कहाँ काम करती है। अङ्गरेज़ी तरीक़े से इस प्रकार का प्रश्न करने का नियम नहीं। किन्तु सभी नियमों का सभी समय पालन नहीं किया जाता। जैसे कि रेल पर सवार होकर पास बैठे हुए यात्री

से—'कहाँ जा रहे हैं महाशय ?'—पूछना अभद्रता की निशानी है। पर 'क्या बहुत दूर जाइयेगा ?' पूछना अनुचित नहीं। वह उत्तर में कह सकता है कि अमुक स्थान तक जाऊँगा। उसको बताने की इच्छा न हो, तो वह कह सकता है—'जी नहीं, बहुत दूर नहीं जाना है।' प्रश्नोत्तर भी हो गया और उसका पर्दा भी बना रहा। इसी तरह मैंने बालिका से पूछा—तो इस तरफ तुम अक्सर आया करती हो ?

बालिका ने कहा—हाँ, मैं सिविल-सर्विस स्टोर्स में टाइप-राइटिंग का काम करती हूँ। रोज़ शाम को घर जाती हूँ। आज शनिवार है। इससे जल्दी छुट्टी मिल गई है।

'चलो, स्ट्रैण्ड का रास्ता छोड़कर हम बेंकमेन्ट होकर चलें। उधर भीड़ कम है।'—इसके बाद उसका हाथ पकड़कर सावधानी से रास्ता पार करा दिया।

टेम्ट नदी के उत्तरी किनारे से बैंकमेण्ट नामक एक रास्ता गया है। मैंने चलते-चलते पूछा—तो तुम सदा इसी रास्ते से जाती हो ?

बालिका ने कहा—जी नहीं। इस रास्ते में भीड़ तो कम रहती है पर ऐसे लोगों की संख्या अधिक रहती है जो गन्दे कपड़े पहने रहते हैं। इसीसे मैं विशेष कर स्ट्रैन्ड और ह्वाइटहाल होकर ही घर लौटती हूँ।

मैं भीतर ही भीतर इस अशिक्षिता दरिद्रा बालिका के सामने पराजित होता जा रहा था। अंगरेज़ जाति की सौन्दर्य-प्रियता के आगे मेरा यह आत्म-पराजय पहले-पहल नहीं था।

बातचीत करते-कराते हम वेस्टमिनिस्टर पुल के पास पहुँचे। मैंने पूछा—तुमको मैं एलिस कहा करूँ या मिस क्लिफ़र्ड ?

बालिका ने मुस्कराकर कहा—मैं तो अभी तक काफ़ी सयानी नहीं हुई। आप चाहें जिस नाम से पुकार सकते हैं। लोग मुझे 'मेगी' कहते हैं।

'तो क्या तुम सयानी होने के लिए उत्कण्ठित हो ?'

'हाँ।'

क्यों ?'

'सयानी होने पर काम करके मैं अधिक अर्थोपार्जन कर सकूँगी। मेरी मा बुड्ढी हो गई है।'

'जो काम तुम अभी करती हो। क्या वह तुम्हारे मन के अनुकूल है ?'

'जी नहीं। मेरा काम तो मैशीन की तरह है। मैं ऐसा काम करना चाहती हूँ जिसमें दिमाग की भी जरूरत हो। जैसे सेक्रेट्री का काम।'

पार्लामेन्ट हाउस के निकट सन्तरी पहरा दे रहा है। उसको दाई ओर छोड़कर वेस्टमिनिस्टर पुल को पार करते हुए हम लोग लैम्बेथ पहुँचे। लैम्बेथ ग़रीबों का गाँव है।

मेगी ने कहा—यदि मैं कभी सेक्रेट्री हो सकूँगी, तो मा को इस मुहल्ले से हटाकर दूसरी जगह ले जाऊँगी।

छोटे आदमियों की भीड़ को पारकर हम लोग बढ़ने लगे। मैंने पूछा—तुम्हारा प्रथम नाम छोड़कर दूसरा नाम क्यों रखा गया ?

'मेरी मा का भी पहला नाम एलिस है। इसी से मेरे पिता ने मेरा दूसरा नाम संक्षिप्त कर लिया था।'

'तुम्हारे पिता तुमको मेगी कहा करते थे या मेगसी ?'

'जब आदर करके पुकारते थे, तो मेगसी ही कहा करते थे। आपने यह कैसे जाना ?'

मैंने मजाक से कहा—मैं भारतीय जो हूँ। हम लोग भूत-भविष्य की अनेक बातें जानते है।

बालिका ने कहा—यह मैंने भी सुना है।

मैंने साश्चर्य पूछा—तुमने क्या सुना है ?

'सुना है कि भारत में ऐसे भी लोग हैं, जो अलौकिक करामात कर दिखाते हैं। उनको वहाँ योगी कहते है। किन्तु आप तो योगी नहीं हैं ?'

'मेगी, तुमने यह कैसे जान लिया कि मैं योगी नहीं हूँ ?'

'क्योंकि योगीजन मांस-भक्षण नहीं करते।'

'तो शायद इसी से तुमने मुझसे पूछा था कि मैं निरामिषभोजी हूँ, या नहीं ?'

बालिका कुछ उत्तर न देकर धीरे-धीरे हँसने लगी।

अब हम एक संकीर्ण घर के दरवाज़े पर थे। जेब से लैच-की निकालकर मेगी ने दरवाजा खोला। भीतर जाकर मुझसे कहा—आइये।

(३)

मेरे भीतर दाख़िल होने के साथ ही मेगी ने दरवाज़ा बन्द कर दिया। फिर सीढ़ी के पास जाकर ज़रा ऊँचे स्वर में पुकारा—मा, तुम किधर हो ?

नीचे से उत्तर मिला—मैं रसोई घर में हूँ, उतर आ बेटी।

यहाँ यह बतला देना आवश्यक होगा कि लन्दन की सड़कें समतल भूमि से अधिक ऊँची हैं। रसोई घर प्रायः रास्ते के धरातल से कुछ नीचा होता है।

सीढ़ी तय करके मैं बालिका के साथ उसके रसोई घर में पहुँचा।

दरवाज़े पर रुककर मेगी ने कहा—हिन्दुस्तान के एक भद्र सज्जन तुमसे मिलने आये हैं।

बुढ़िया ने साग्रह पूछा—वे कौन हैं ?

मैं मेगी के पीछे-पीछे मुस्कराता हुआ भीतर गया। बालिका ने हमारा परस्पर परिचय करा दिया—ये मिस्टर गुप्त हैं, यह मेरी मा है।

'How do you do !'—कहकर मैंने हाथ बढ़ा दिया।

मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा—क्षमा कीजियेगा, अभी मेरा हाथ साफ़ नहीं है। देखा, उसमें मैदा लगा था। कहने लगी—आज शनिवार है, इससे आज केक बना रही हूँ। शाम को आकर लोग ख़रीद लेंगे। रात में सड़क पर इसकी बिक्री होगी। इसी प्रकार हम कठिनता से अपना निर्वाह करते हैं।

दरिद्रों के मुहल्ले में शनिवार की रात्रि एक महोत्सव जैसी होती है। अनगिनत सौदा बेचनेवाले ठेलेगाड़ियों पर बत्ती जलाये हुए, बेचने को सौदा लिये रास्ते-रास्ते घूम-घूमकर बेचते हैं। सड़कों पर और दिन की अपेक्षा इस दिन अधिक चहल-पहल और भीड़-भाड़ रहती है। शनिवार ही दरिद्रों के लिए सौदा-सुलुफ़ करने का दिन है क्योंकि उन्हें साप्ताहिक वेतन उसी दिन मिलता है।

ड्रेसर* के ऊपर मैदा, चर्बी, किशमिश और अंडा वग़ैरह केक तैयार करने की सामग्री रखी है। टीन के एक बर्तन में तुरत की पकी हुई कई केक भी रखी हैं।

* रसोई घर के टेबुल को ड्रेसर कहते हैं।

मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा--गरीब घर के रसोईखाने में बैठना आप को खलेगा तो नहीं? मेरा काम अब क़रीब-क़रीब खतम पर है। मेगी, तुम इन्हें ले जाकर घर में बिठाओ। मैं अभी तुरत ही आती हूँ।

मैंने कहा--नहीं, नहीं। मैं यहीं बहुत मज़े में बैठा हूँ। आप तो बहुत बढ़िया केक सेंकती हैं।'

मिसेज़ क्लिफर्ड ने सस्मित मुख से मुझे धन्यवाद दिया। मेगी ने कहा--मेरी मा टॉफी अच्छी बनाती हैं। क्या चखकर देखियेगा?

मैंने प्रसन्नता के साथ अपनी सहमति प्रकट की। एक 'कबर्ड' खोलकर मेगी टीन के एक डब्बे में मुँह तक भरी हुई टॉफी ले आई। मैं चखकर प्रशंसा करने लगा।

केक बनाते-बनाते ही मिसज़ क्लिफर्ड ने पूछा--भारतवर्ष कैसा देश है, महाशय?

'सुन्दर देश है।'

'क्या वहाँ का निवास निरापद है?'

'जी हाँ, बिल्कुल निरापद है। पर इस देश की तरह ठण्ढा नहीं है। कुछ-कुछ गर्म है।'

'क्या वहाँ साँप और बाघ बहुत अधिक हैं? वे मनुष्यों को सताते तो नहीं हैं?'

मैंने हँसकर कहा--इन बातों पर यक़ीन न करें। साँप और बाघ जंगल में रहते हैं, गावों में नहीं। और अगर कभी गाँव में आ भी जाते हैं, तो तुरन्त मार दिये जाते हैं।

'और ज्वर।'

'ज्वर भारत में कहीं-कहीं अधिक फैला है। लेकिन सर्वत्र सब समय नहीं।'

'मेरा पुत्र पंजाब में है। वह सैनिक है। पंजाब कैसी जगह है, महाशय?'

'पंजाब तो बहुत अच्छी जगह है। वहाँ ज्वर बहुत ही कम है। वहाँ की आब-हवा बड़ी अच्छी है।'

मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा--यह जानकर मुझे बड़ी ख़ुशी हुई।

उसका केक सेंकना समाप्त हुआ। अपनी लड़की से कहा--मेगी, तुम मिस्टर गुप्त को ऊपर ले चलो, मैं हाथ धोकर चाय बना लाती हूँ।

मेगी आगे-आगे और मैं पीछे-पीछे चलकर उसके बैठकखाने में पहुँचे। देखा, वहाँ की सभी वस्तुएँ बहुत ही मामूली क़ीमत की थीं। मेज़ का कार्पेट बहुत पुराना हो गया था। जहाँ-तहाँ फटा भी था, और उसमें पेवन्द सटे थे।

भीतर आकर मेगी ने पर्दा हटा दिया और खिड़कियाँ खोल दीं। एक काँच की पुस्तकों की आलमारी थी। मैं उसी को देखने लगा।

कुछ ही क्षणों में मिसेज़ क्लिफर्ड चाय के ट्रे के साथ कमरे में दाख़िल हुईं। अब उनके शरीर पर रसोई-घर का एक भी चिह्न न था। चाय पीते-पीते मैं भारतवर्ष की बातें बताने लगा।

मिसेज़ क्लिफर्ड ने अपने बेटे का एक फोटोग्राफ दिखाया। वह उसके भारत-प्रस्थान करने के पहले ही लिया गया था। उनके लड़के का नाम फ्रांसिस या फ्रैंक था। मेगी ने एक चित्र-पुस्तिका बाहर निकाली। उसके जन्म-दिन के उपलक्ष्य में उसके भाई ने उसे भेजा था। इसमें शिमला शैल के अनेक सुन्दर दृश्य थे। भीतर के प्रथम पृष्ठ पर लिखा था--To Maggie on her birthday from her loving brother, Frank.

मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा--मेगी, वह अँगूठी तो मिस्टर गुप्त को दिखला दे।

मैंने पूछा—क्या तुम्हारे भाई ने उसे भेजा है? क्यों मेगी, कैसी वह अँगूठी है?

मेगी ने उत्तर दिया—वह एक जादू-भरी अँगूठी है। मेरे भाई को उसे एक योगी ने दिया था। और फिर अँगूठी निकालकर मेरे सामने रख दी। और पूछा—क्या आप इससे भूत-भविष्य का हाल बता सकते हैं?

Crystal joying नामक एक मामले की बातें मैं कई दिनों से सुन रहा था। देखा, अँगूठी पर एक पत्थर जड़ा है।

मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा—फ्रैंक ने इस अँगूठी के सम्बन्ध में लिखा था कि संयत मन से इस अँगूठी से यदि प्रश्न किया जाय तो भूत-भविष्य और वर्तमान—तीनों काल की बातें ज्ञात होंगी। योगी ने फ्रैंक को ऐसा ही बतलाया था। बहुत दिनों से फ्रैंक का कोई समाचार न पाकर मैंने और मेगी ने कई बार इसके प्रति उत्सुक नेत्रों से प्रश्न किया है, पर कोई फल नहीं निकला। एक बार आप भी पूछ देखिये न! आप हिन्दू हैं, इसलिए शायद आपको सफलता मिलेगी।

मैंने देखा कि अन्ध-विश्वास केवल भारतवर्ष में ही नहीं है। वह यहाँ यूरोप जैसे उन्नत देशों में भी है। मामूली पीतल की अँगूठी थी, जिसमें काँच का एक टुकड़ा जड़ा था। फिर भी मा-बेटी से यह बात कहने को मन नहीं हुआ। उन दोनों ने समझ रखा था कि उनके फ्रैंक ने उस बहुदूर स्वप्नवत् भारतवर्ष से यह नूतन और विचित्र सन्देश उनके पास भेजा है। इस विश्वास को मैं नष्ट भी करूँ तो कैसे?

मिसेज़ क्लिफर्ड और मेगी का अत्यन्त आग्रह देखकर मैं अँगूठी को हाथ में ले स्फटिक की ओर देर तक एक नज़र से स्थिरतापूर्वक देखता रहा। अन्त में उन्हें अँगूठी लौटाकर कहा—मुझे तो कुछ भी नज़र नहीं आता।

मा-बेटी दोनों ही कुछ निराश हुईं। उनका ध्यान दूसरी ओर ले जाने के लिए मैंने कहा—मेगी, यह सारंगी शायद तुम्हारी है?

मिसेज़ क्लिफ़र्ड ने कहा—हाँ, मेगी इसे बहुत सुन्दर बजाती है। कुछ बजा-सुना दे मेगी!

मेगी ने मा की ओर ज़रा रोष प्रकट करते हुए कहा—Oh mother!

मैंने कहा—मेगी, ज़रा बजाओ न। मुझे सारंगी का स्वर बड़ा मीठा और प्रिय लगता है। देश में मेरी एक बहन है। उसकी उमर भी तुम्हारी ही इतनी होगी। वह मुझे सारंगी बजाकर सुनाती थी।

मेगी ने कहा—मैं जैसा बजाती हूँ, वह प्रायः सुनने के लायक़ नहीं होता।

मेरे विशेष आग्रह पर मेगी बजाने को तैयार हुई। कहने लगी—मेरे पास कुछ अधिक नहीं है। फिर क्या सुनेंगे आप?

'तो मैं ही फरमाइश करूँ? अच्छा तुम्हरा म्यूज़िक बक्स कहाँ है? देखूँ तो भला।'

मेगी ने काले चमड़े का बना एक पुराना म्यूज़िक केस निकाला। खोलकर देखा कि उसमें अधिकांश स्वर-लिपि सामान्य हैं। जैसे 'Good-bye Dolly Grey', 'Honeysuckle and the Bee'—आदि। फिर भी कुछ चीज़ें अवश्य सुन्दर हैं, यद्यपि प्रचलन के लिहाज़ से अब पुरानी पड़ गई हैं—यथा—'Annie Laurie' 'Robin Adoir,' 'The last Rose of Summer' आदि। मैंने देखा कि कुछ स्कॉच गीत भी हैं। स्कॉच गाने मुझे

बहुत प्रिय हैं। अतः Bluebells of Scotland नामक स्वर-लिपि चुनकर मैंने मेगी के हाथ में दे दी।

मेगी सारंगी में बजाने लगी। मैंने मन ही मन अलापकर गीत गाया—

'Oh where—and where—is my highland laddie gone.'

बजाना खतम होते ही धन्यवाद देते हुए मैं मेगी की प्रशंसा करने लगा। मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा—मेगी को अभी तक उपयुक्त शिक्षा पाने का सुअवसर नही मिला। जो कुछ भी सीखा है, परिश्रम से सीखा है। यदि कभी हमारे सुदिन आयेंगे तो इसको lessons दिलाने का प्रबन्ध करूँगी।

बात चीत हो चुकने पर मैंने कहा—मेगी और कुछ बजाओ न।

अब मेगी का संकोच दूर हो गया था। पूछा—कहिये, क्या बजाऊँ?

मैंने उसकी स्वर-लिपि में खोज की। पर शौक़ीन-समाज में जो गीत आजकल प्रचलित हैं, उनमें से वहाँ एक भी मुझे नहीं मिला। सोचा, उन गीतों की प्रतिध्वनि अभी इन ग़रीब की झोंपड़ियों तक नही पहुँची।

खोजते-खोजते अचानक एक प्रथम श्रेणी की स्वर-लिपि मुझे मिली। यह Gounod रचित Faust नामक opera का Flower Song था। गान हाथ में लेकर मैंने कहा—इसे बजाओ।

मेगी ने बजाया। बजाना समाप्त होने पर मैं कुछ क्षणों तक चुपचाप बैठा रहा। Culture नाम की वस्तु पाश्चात्य समाज में किस सतह तक पहुँच चुकी है, यही मैं सोचता था। मेगी ने इस दुस्तर स्वर-लिपि को भी बड़ी सरलता से बजा लिया। और आश्चर्य यह कि वह थी एक नीची श्रेणी की एक बालिका-मात्र। मैंने सोचा, कलकत्ते के किसी प्रकाण्ड बैरिस्टर अथवा विख्यात सिविलियन की—मेगी की हमजोली—कन्या गुनोड के फास्ट से अगर एक गीत इस उत्तमता से बजाती, तो समाज में वाह-वाह की पुकार मच जाती।

मेगी को धन्यवाद देकर मैंने पूछा—तुमने क्या इसे भी खुद बख़ुद सीख लिया है?

'नहीं, इसे मैंने अपने आप नहीं सीखा। गिरिजा के मिनिस्टर की बेटी से मैंने इसे सीखा है। आपने कभी और यह अपेरा सुना है?'

मैं—नहीं, मैंने अपेरा में कभी फॉस्ट नहीं सुना। परन्तु गाइट के फास्ट के अंगरेज़ी अनुवाद का अभिनय लाइसोयम में देखा है।

'लाइसोयम में ? जहाँ अर्विंग अभिनय करते हैं ?'

'हाँ, तुमने अर्विङ्ग का अभिनय देखा है ?'

'जी नहीं, मैं कभी वेस्ट एण्ड थियेटर नहीं गई। अर्विङ्ग को अभी देखा तक नहीं। चित्रों की दूकान पर उनकी फ़ोटो अवश्य देखी है।'

अर्विङ्ग इन दिनों लाइसोयम में Merchant of Venice का अभिनय करते हैं। मिसेज़ क्लिफर्ड और तुम यदि एक दिन आओ, तो ख़ुशी के साथ तुम लोगों को दिखलाऊँ।'

मिसेज़ क्लिफर्ड ने सधन्यवाद अपनी सहमति प्रकट की। मैंने पूछा—आप शाम का अभिनय देखना पसन्द करेंगी, या दोपहर का ?

यहाँ पर लन्दन के थियेटर के सम्बन्ध में कुछ कह देना ज़रूरी होगा। लन्दन में थियेटर रविवार छोड़कर नित्य रात में ही खेला जाता है। इसके सिवा किसी थियेटर में शनिवार को, किसी में बुधवार को, किसी में शनिवार और बुधवार दोनों ही दिन 'मैटनी' अर्थात् दिन के दूसरे पहर भी अभिनय होता है। किसी थियेटर में एक नाटक का अभिनय प्रारम्भ होने पर नित्य उसी का अभिनय होता है। और जब तक दर्शकों की कमी नहीं होती चलता रहता है। इस प्रकार कोई नाटक दो महीने, कोई छः महीने, या लोक-प्रिय Musical comedy होने पर दो-तीन साल तक लगातार होता रहता है।

मिसेज़ क्लिफर्ड ने कहा—मेरी तबीयत ठीक नहीं। दिन के दोपहरवाले अभिनयमें ही सुभीता होगा। किसी शनिवार को मेगी की छुट्टी के बाद सभी लोग एक साथ ही चलेंगे।

मैंने कहा—बहुत अच्छा। सोमवार को जाकर आगत शनिवार के लिए टिकट ख़रीद लूँगा। इसकी सूचना आप को भी दे दूँगा।

मेगी ने कहा—किन्तु मिस्टर गुप्त, आप बहुत अधिक दाम का टिकट नहीं ख़रीदेंगे। यदि आप क़ीमती टिकट खरीदेंगे, तो हम लोगों को दुःख होगा।

मैंने कहा—नही जी, अधिक दाम का टिकट क्यों ख़रीदूँगा। अभी अपर सर्किल का टिकट ख़रीदूँगा। मैं भारत का कोई राजा-महाराजा नहीं हूँ। अच्छा, तुमने Merchant of Venice पढा है ?

'मूल नाटक नहीं देखा है। स्कूल के मेरे पाठ्य-ग्रन्थ में Lamb's Tales में थोड़ी-सी कहानी संक्षिप्त में थी। मैंने उसी को पढ़ा है।'

अच्छा, मैं तुम्हारे लिए मूल नाटक भेज दूँगा। अच्छी तरह पढ़ रखना। उससे अभिनय समझने में सुभीता होगा।' शाम हो रही थी। मैंने उनसे बिदा माँगी।

सोमवार को दिन में दस बजे लाइसीयम के बॉक्स-ऑफिस में जाकर कर्मचारी से पूछा—अगले शनिवार के तीसरे पहरवाले अभिनय के लिए मुझे अपर सर्किल के तीन टिकट मिल सकते हैं?

'नहीं, महाशय! अभी दो शनिवार तक नहीं। सारी सीटों के टिकट बिक गये हैं।'

'तीसरे शनिवार को?'

'उस दिन के लिए दे सकता हूँ।'—कहकर उसने उस तारीख का एक प्लान बाहर किया। देखा, उस शनिवार को भी अपर सर्किल की कई सीटें रिज़र्व हो गई हैं। बिकी हुई सीटों का नम्बर नीली पेन्सिल से कटा था।

प्लान हाथ में ले, रिक्त स्थान में से एक स्थान की परस्पर-संलग्न तीन सीटों को पसन्द करके मैंने उनका नम्बर कर्मचारी को बतला दिया। बारह शिलिंग में उन नम्बरों के टिकट लेकर मैं डेरे पर चला आया।

(४)

तीन महीने बीत गये। इस बीच मैं और भी कई बार मेगी के साथ मेगी की मा से मिल आया हूँ। एक दिन मैं मेगी को 'ज़ू गार्डेन' भी ले गया था। वहाँ Indian Raja नामक हाथी पर अन्यान्य बालक-बालिकाओं के साथ मेगी भी चढ़ी थी। हाथी पर सवार होने में उसे अत्यन्त प्रसन्नता थी।

किन्तु अभी तक उसके भाई का कोई समाचार नहीं मिला। एक दिन मिसेज़ क्लिफर्ड के अनुरोध से मैंने इण्डिया ऑफिस में जाकर पता लगाया। सुना कि जिस रेजीमेन्ट में फ्रैंक है, वह आजकल सीमान्तसमर में तैनात है। यह समाचार पाकर मिसेज़ क्लिफर्ड बहुत चिन्तित हो गई।

एक दिन अति प्रातः मेगी का एक पोस्टकार्ड मिला। लिखा था:—

'प्रियमिस्टर गुप्त,

मेरी मा बहुत बीमार हैं। मैं आज एक सप्ताह से अपने काम पर नहीं जा सकी। यदि आप एक बार यहाँ आने की कृपा करें, तो मैं बहुत अधिक उपकृत हूँगी।

—मेगी।'

मैं जिस परिवार में रहता था, उन लोगों से मेगी और उसकी मा के सम्बन्ध में मैंने पहले ही बातचीत की थी। आज जलपान के समय यह संवाद भी उन्हें सुना दिया।

गृहिणी ने मुझसे कहा—तुम जब जाना, तो कुछ रुपए लेते जाना। लड़की एक हफ़्ते से काम पर नहीं गई। वेतन भी नहीं मिला होगा। मालूम होता है, बेचारी बड़ी मुसीबत में है।

नाश्ता करके मैंने कुछ रुपए लिये और लैम्बेथ की ओर चला। उनके घर पहुँचकर दरवाज़ा खटखटाया। मेगी ने दरवाज़ा खोल दिया।

उसका चेहरा बहुत ही उदास था। आँखें धँस गई थीं। मुझको देखते ही बोली—

'Oh thank you Mr. Gupta, it is so kind.'—

पूछा—मेगी, तुम्हारी मा कैसी है?

मेगी बोली—वह इस समय सो गई हैं। वे बहुत बीमार हैं। डॉक्टर ने कहा कि फ्रैंक का समाचार न मिलने से चिन्ता के मारे उनकी बीमारी बढ़ गई है। शायद वे अब अधिक दिन बचेंगी नहीं।

मैं मेगी को सांत्वना देने लगा। अपने रूमाल से मैंने उसकी आँखें पोंछ दी।

मेगी ने कुछ शान्त होकर कहा—आपसे मैं एक भिक्षा चाहती हूँ।

मैंने पूछा—क्या है, मेगी?

'बैठकख़ाने में चलिये। वहीं कहूँगी।'

हमारे पैरों की आहट से कहीं वृद्धा की आँखें खुल न जायँ, इस लिए हमलोग बहुत सतर्कता से बैठक में गये। बिछावन पर खड़े होकर मैंने पूछा—अच्छा अब मेग? मेगी मेरे मुख की ओर देखती हुई कुछ देर तक निर्निमेष रही। मैं भी प्रतीक्षा में रहा। अन्त में मेगी कुछ न बोलकर दोनों हाथों से मुख को ढाँककर रोने लगी।

मैं बड़ी मुश्किल में पड़ा। इस बालिका को मैं क्या कहकर धैर्य दूँ? इसका भाई सीमान्त-समर में है! जीवित है, या मर गया—ईश्वर ही जाने। पृथ्वी पर

उसका एक-मात्र आधार माता थी। उस माता के भी न रहने से उसकी क्या दशा होगी? यह यौवनोन्मुखी बालिका इस लन्दन में कहाँ खड़ी होगी?

मैंने बलात् उसके हाथ उसके मुँह पर से हटा दिये और कहा--मेगी, क्या कहना है, कहो। मेरे द्वारा यदि तुम्हारा कोई उपकार हो सकेगा, तो मैं उसके करने में कभी भी विमुख नहीं हूँगा।

मेगी ने कहा--मिस्टर गुप्त, मैं नहीं जानती कि मैं जो प्रस्ताव आपसे अभी करूँगी, उसे सुनकर आप क्या समझेंगे। यदि वह अत्यन्त गर्हित हो, तो आप मुझे क्षमा करेंगे।

'क्या?--क्या तुम्हारा प्रस्ताव है?'

'कल दिन भर मा यही कहती रहीं कि यदि मिस्टर गुप्त आकर, उस पत्थर जड़ी अँगूठी की ओर कुछ देर तक देखें, तो शायद फ्रैंक का कोई समाचार वे जान सकें। वे तो हिन्दू हैं।--मैंने इसीलिए आपको पत्र लिखकर बुलाया है।'

'यदि तुम्हारी इच्छा ही है तो अँगूठी ले आओ। मैं इस बार अवश्य ही चेष्टा करूँगा।'

मेगी ने घबड़ाये हुए स्वर में पूछा--यदि इस बार भी आपको कुछ पता न चले तो?

मैंने मेगी के मन का भाव समझ लिया। समझकर चुप हो रहा।

मेगी बोली--मिस्टर गुप्त, मैंने पुस्तक में पढ़ा है कि हिन्दू जाति बहुत सत्य-परायण होती है। आप यदि स्फटिक देखने के बाद मेरी मा से यह कह दें--फ्रैंक अच्छा है, जीवित है, तो क्या वह बात बिलकुल झूठ होगी? बहुत बेजा होगी?

यह कहते-कहते बालिका की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

मैं कई क्षणों तक सोचता रहा। फिर मन ही मन निश्चय किया--मैं कोई परमात्मा नहीं। मैंने इस जीवन में अनेकों पाप किये हैं। एक पाप और सही। यह मेरा सबसे छोटा पाप होगा।

प्रकट में कहा--मेगी, तुम चुप रहो। रोओ मत। कैसी है, वह अँगूठी! लाओ एक बार अच्छी तरह देखूँ तो सही। यदि कुछ भी दिखाई नहीं पड़ेगा, तो तुमने जैसा कहा है, वैसा ही करूँगा। वैसा करना यदि अन्याय भी होगा, तो भगवान मुझे क्षमा करेंगे।

मेगी ने अँगूठी लाकर मुझे दी। उसे हाथ में लेकर मैंने कहा—अच्छा, तुम ज़रा देख तो आओ कि तुम्हारी मा अभी जगी हैं या नहीं?

लगभग पन्द्रह मिनटों के बाद मेगी लौटी। कहा—मा जाग गई हैं। उनको आपके आने की सूचना भी मैंने दे दी है।

'तो क्या मैं अभी चलकर उनको देख सकता हूँ?'

'चलिये।'

मैं वृद्धा की रोग-शैय्या के पास गया। मेरे हाथ में अभी भी वह अँगूठी थी। उनसे Good morning करके मैंने कहा—मिसेज़ क्लिफर्ड, आपके पुत्र स्वस्थ हैं, जीवित हैं। इस बात के सुनते हीं वृद्धा ने तकिए से अपना सिर कुछ ऊपर किया और पूछा—क्या आपने यह स्फटिक पर देखा है?

मैंने निःसंकोच होकर कहा—हाँ, मैंने इसे स्फटिक पर ही देखा है।

बुढ़िया ने फिर अपना सिर तकिए पर रख लिया। उसकी आँखों से आनन्दाश्रु प्रवाहित होने लगे। वह अस्फुट स्वर से कहने लगी—God bless you—God bless you!

× × ×

मिसेज़ क्लिफर्ड इस बार पूर्ण स्वस्थ हो गई।

(५)

अब अपने देश लौट चलने के मेरे दिन समीप आ गये। एक बार इच्छा हुई कि लैम्बेथ जाकर मेगी और उसकी मा से बिदा माँग लूँ। किन्तु वह परिवार इस समय शोक-सन्तप्त है। सीमान्त के युद्ध में फ्रैंक मारा गया। एक मास हुआ काले बॉर्डरदार पत्र के ज़रिये मेगी ने यह ख़बर मुझे भेजी थी। हिसाब करके देखा कि जिस दिन मैंने मिसेज़ क्लिफर्ड से कहा था कि उसका पुत्र चंगा है, जीवित है, उसके पहले ही उसके पुत्र की मृत्यु हो गई थी। इसी कारण मिसेज़ क्लिफर्ड के सामने होने में मुझे लज्जा मालूम होती थी। अतः मैंने एक पत्र लिखकर मेगी और उसकी मा को अपने देश-प्रस्थान की बात जताई।

क्रम से लन्दन में मेरी अन्तिम रात्रि का सवेरा हुआ। मैं आज अपने देश को जाऊँगा। परिवार के सभी लोगों के साथ नाश्ता कर रहा था। इसी समय बाहर के दरवाज़े पर किसी ने पुकारा।

कुछ ही क्षणों के बाद दासी ने आकर खबर दी—Please Mr. Gupta—मिस क्लिफर्ड आपसे मिलने आई हैं !

मेरा नाश्ता अभी समाप्त नहीं हुआ था। मैं समझ गया कि मेगी मुझे बिदा देने आई है। उसे अपने काम पर जाने में कहीं देर न हो जाय इस भय से मैंने गृहिणी की अनुमति लेकर टेबुल छोड़ दिया। हाल में जाकर देखा, काले कपड़े से शरीर को लपेटे मेगी खड़ी है।

बग़ल में ही पारिवारिक पुस्तकालय का कमरा था। वहीं ले जाकर मैंने मेगी को बिठाया।

मेगी ने पूछा—आप आज ही जायँगे ?

'हाँ मेगी, आज ही मेरी यात्रा का दिन है।'

'देश पहुचने में आपको कितने दिन लगेंगे ?'

'दो सप्ताह से कुछ अधिक।'

'वहाँ आप कहाँ ठहरेंगे ?'

'मैं पंजाब-सिविल सर्विस में भर्ती हुआ हूँ। वहाँ पहुँचे बिना मैं निश्चित रूप से नहीं बता सकता कि मुझे कहाँ रहना होगा।'

'क्या वहाँ से सीमान्त बहुत दूर है ?'

'नहीं, अधिक दूर नहीं है।'

'डेरा ग़ाज़ी खां के पास फोर्ट मजरो में फ्रैंको की समाधि है।'—इतना कहते-कहते बालिका की आँखों से आँसू छलक पड़े।

मैंने कहा—मैं जब उस ओर जाऊँगा, तो अवश्य ही तुम्हारे भाई की समाधि को देखकर तुम्हें पत्र लिखूँगा।

मेगी ने कहा—किन्तु आपको कुछ कष्ट अथवा असुविधा तो नहीं होगी।

'कैसा कष्ट ? कहाँ की असुविधा ? मैं जहाँ रहूँगा, वहाँ से डेरा ग़ाज़ी खाँ बहुत दूर तो नही है। सुविधानुसार वहाँ एक बार मैं जाकर अवश्य तुम्हें पत्र लिखूँगा।'

मेगी का मुख-मंडल कृतज्ञता से उद्भासित हो उठा। उसने मुझे धन्यवाद दिया—उसका गला रुँध गया। उसने पाकेट से एक शिलिंग निकालकर टेबल पर रखा और कहा—आप जब वहाँ जायँ, तो एक शिलिंग के फूल खरीदकर मेरे भाई की समाधि पर फैला दीजियेगा।

भावावेग से मेरी आँखें झुक गईं।

सोचा, बालिका के बहुत कष्ट से कमाई हुई इस शिलिंग को लौटा दूँ और कहूँ कि हमारे देश में फूल जहाँ-तहाँ सर्वत्र अजस्र परिमाण में मिलते हैं। वहाँ पैसे देकर ख़रीदना नहीं पड़ता।

किन्तु फिर सोचा--यह जो त्याग का एक आनन्द है, उससे बालिका को वञ्चित क्यों करूँ? बहु-कष्ट-अर्जित इस शिलिंग के द्वारा जितना भी सुख स्वच्छन्दता प्राप्त हो सकता है, उसे यह प्रेम के नाम पर त्यागने को प्रस्तुत है। उस त्याग की क़ीमत बहुत अधिक है। उसको उपार्जन करके बालिका का हृदय कुछ शीतल होगा। इससे बालिका को वंचित करके क्या फल निकलेगा? यही सोचकर उस शिलिंग को मैंने उठा लिया। फिर कहा—मेगी, इस शिलिंग का फूल ख़रीदकर मैं तुम्हारे भाई की समाधि पर सजा दूँगा।

मेगी उठ खड़ी हुई। कहने लगी—मैं क्या कहकर आपको धन्यवाद दूँ? नौकरी पर जाने का मेरा समय आ पहुँचा Good bye—पत्र लिखियेगा।

मैंने उठकर मेगी का हाथ अपने हाथ में ले लिया। फिर कहा--Good bye Maggie, God bless you! कहकर उसका हाथ अपने होठ के पास ले जाकर चूम लिया।

मेगी चली गई।

रूमाल से आँखों के आँसू पोंछकर बॉक्स-ट्रंक आदि सम्हालने के लिए मैं ऊपर चला गया।

महेश

शरच्चंद्र चट्टोपाध्याय

[बँगला सन् १२८३ में हुगली ज़िले के देवानन्दपुर में शरत्चन्द्र का जन्म हुआ था। उनके पिता का नाम था कालिनाथ चट्टोपाध्याय। बाल्यावस्था में इनका पालन-पोषण बहुत ही दरिद्रावस्था में हुआ था, इसलिए एन्ट्रेन्स पास करने के बाद ये आगे न पढ़ सके थे। शरत्चन्द्र के जीवन के आरम्भिक दिन भागलपुर में अपनी ननिहाल में बीते थे। वहीं इन्होंने साहित्य-सेवा भी आरम्भ की थी। इस विषय में जो लोग इनके सहकारी थे आगे चलकर उनमें से कई सज्जन साहित्य-क्षेत्र में बहुत प्रसिद्ध हुए थे। जिन दिनों ये भागलपुर में रहते थे, उन दिनों बिना किसी प्रकार के संकोच के ये सभी तरह के लोगों के साथ मिलाजुला करते थे। इसी के फल-स्वरूप एक ओर जिस प्रकार इन्होंने सब तरह की अभिज्ञता प्राप्त की थी, उसी प्रकार दूसरी ओर इन्हें तरह-तरह के नशों का भी शौक़ हो गया था और बहुत-सी बुरी आदतें भी लग गई थीं। जीविका-उपार्जन के काम में शरत्चन्द्र ने कभी कोई विशेष सफलता नहीं प्राप्त की थी। आरम्भ में एक-दो छोटी-मोटी नौकरियाँ करने के बाद इन्होंने बरमा में लकड़ी के एक कारख़ाने में साधारण क्लर्क का पद प्राप्त किया था। वहीं से पहले इनकी लिखी हुई कहानियाँ और उपन्यास 'यमुना' और 'भारती' आदि पत्रिकाओं में प्रकाशित होने लगे थे। थोड़े ही दिन बाद ये फिर कलकत्ते लौट आये थे। तभी से इन्होंने साहित्य-सेवा को स्थायी रूप से अपनी वृत्ति बना लिया था। इनकी ग्रन्थावली थोड़े ही दिनों में देश-विदेश में बहुत अधिक आदर प्राप्त करने लग गई थी। अनेक भाषाओं में उनके अनुवाद भी होने लग गये थे; और बाद में इनके ग्रन्थ सिनेमाओं में भी प्रदर्शित होने लगे थे। शरत्चन्द्र को सभी लोग एक स्वर से बँगला का सर्वश्रेष्ठ आधुनिक उपन्यास-लेखक मानते हैं। सन् १९३८ ई० की जनवरी में इनकी मृत्यु हुई थी।

शरत्चन्द्र की कहानियों और उपन्यासों में मध्यवित्त बंगाली जीवन की बहुत-सी बड़ी-बड़ी समस्याओं का विवेचन हुआ है। जो सब संस्कार, जो सब क्षुद्रतायें, जो सब संकीर्णतायें मनुष्य के जीवन को सब प्रकार की सम्भावनाओं के रहते हुए भी प्रधानतः व्यर्थ कर देती हैं, उनके विरुद्ध इन्होंने तीव्र टीकायें करना आरम्भ

किया था। इन्होंने दिखलाया है कि वंश-मर्यादा, धन-सम्पत्ति या तथोक्त भद्रता की छाया में जो लोग पलते हैं, उनमें कितनी ग़लतियाँ और ख़राबियाँ हैं। इसके विपरीत नीचों, पतितों और अन्त्यजों में भी मनुष्यत्व अथवा ममत्व रहता है। मनुष्य का सम्मान करने, उसके प्रति श्रद्धा दिखलाने और उसका सहज अधिकार स्थापित करने के लिए ही इन्होंने लेखनी ग्रहण की थी। इनका चरित्र-चित्रण या घटना-विन्यास जिस प्रकार मनोविज्ञान की दृष्टि से बिलकुल शुद्ध और ठीक है, उसी प्रकार कला-सृजन के विचार से वह बहुत ही सुन्दर भी है। इनके सभी उपन्यास और कहानियाँ इनकी प्रत्येक अभिज्ञता और ममतामय अनुभूति के फल हैं। जीवन को इन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। उसका आघात इन्होंने स्वयं सहा था; और उसी व्यक्तिगत वेदना के बोध ने इनकी साहित्यिक-दृष्टि को संजीवित किया था। इनकी दृष्टि की समग्रता या पूर्णता और रचना शैली में जो और अनेक प्रकार के माधुर्य हैं, उनका मूल कारण यही है। इनकी छोटी कहानियाँ संख्या में कम हैं। जो छोटी कहानियाँ इन्होंने लिखी हैं, अनेक कारणों से 'महेश' उनमें विशेष रूप से उल्लेख के योग्य है। इसमें इन्होंने यह दिखालाया है कि एक निरन्न और कंगाल कृषक पर बलवान ज़मींदारों के कैसे-कैसे अत्याचार होते हैं। उन्हीं अत्याचारों का एक करुणापूर्ण चित्र इसमें अंकित है। इनकी अन्यान्य रचनाओं में यह दृष्टि सहज में नहीं दिखाई देती। दीन और दरिद्र श्रमिकों या कृषकों या इसी श्रेणी के और लोगों के चरित्र ने इनके साहित्य में गौण रूप से ही स्थान प्राप्त किया है। और उन्हीं की सर्वाङ्गीण प्रधानता इस 'महेश' नामक गल्प में दिखाई देती है। केवल इसीलिए नहीं, बल्कि कथा-विन्यास की दृष्टि से भी यह कहानी एक प्रथम श्रेणी की रचना है।]

महेश

गाँव का नाम काशीपुर है। गाँव छोटा-सा है और वहाँ के ज़मींदार और भी छोटे है। लेकिन फिर भी उनके रोब के मारे कोई प्रजा चूँ तक नहीं कर सकती—ऐसा उनका प्रताप है!

आज उनके छोटे लड़के की बरस गाँठ की पूजा थी। पूजा के सब काम समाप्त करके तर्करत्न महाशय दोपहर के समय अपने घर लौट रहे थे। वैशाख का प्रायः अन्त हो रहा था; लेकिन आकाश में कहीं मेघ की छाया भी नहीं दिखाई देती थी। अनावृष्टि के कारण आकाश से मानो आग बरस रही थी।

सामने दिगन्त तक फैला हुआ मैदान जल-भुनकर खंड खंड हो रहा था और उसकी लाखों दरारों में से पृथ्वी के कलेजे का रक्त निरन्तर धूआँ बनकर निकल रहा था। अग्नि शिखा की तरह उसकी सर्पिल ऊर्ध्व गति की ओर देखने से सिर चकरा जाता था—मानो एक नशा-सा चढ़ आता था।

इसी की सिवान पर जो रास्ता था, उसी रास्ते के एक किनारे ग़फ़ूर जुलाहे का मकान था। उस मकान की मिट्टी की चहारदीवारी आँगन में गिरकर रास्ते के साथ मिल गई थी और उसके अन्तःपुरका लज्जा-सम्भ्रम पथिकों की करुणा के सामने आत्म समर्पण करके निश्चिन्त हो गया था।

रास्ते के पास ही एक पेड़ की छाया के नीचे खड़े होकर तर्करत्न महाशय ने ज़ोर से पुकारा—अबे ओ ग़फ़ूर! अरे घर में है?

उसकी दस बरस की लड़की ने दरवाज़े पर आकर कहा—अब्बा को बुलाते हैं? उन्हें बुख़ार आया है।

तर्क०—बुख़ार! बुला ला उस हरामज़ादे को। पाखंडी! म्लेच्छ!

ये सब बातें सुनकर ग़फ़ूर बाहर निकला और मारे बुख़ार के काँपता हुआ उनके पास आ खड़ा हुआ। टूटी हुई चहारदीवारी के साथ ही बबूल का एक पुराना पेड़ सटा हुआ खड़ा था, जिसकी डाल में एक बैल बँधा हुआ था। तर्करत्न

ने उसी की ओर दिखलाते हुए कहा--भला बतलाओ तो यह सब क्या हो रहा है ? यह जानते हो कि यह हिन्दुओं का गाँव है और यहाँ के ज़मींदार ब्राह्मण हैं ?

तर्करत्न का मुख मारे क्रोध और धूप के लाल हो रहा था ; इसलिए उसमें से जो वाक्य निकलते थे, वे भी तप्त और अंगारे की ही तरह होते थे । लेकिन बेचारे ग़फ़ूर की समझ में इसका कुछ भी मतलब नहीं आ रहा था, इसलिए वह चुपचाप उनका मुँह ही ताकता रहा ।

तर्करत्न ने कहा--सबेरे जाने के समय मैं देख गया था कि यह बैल यहीं बँधा था ; और अब दोपहर के समय लौटने पर भी देख रहा हूँ कि वह ज्यों-का-त्यों यहीं बँधा है । अगर कहीं गो-हत्या हो गई तो मालिक तुम्हें जीते-जी क़ब्र में गाड़ देंगे । वह ऐसे-वैसे ब्राह्मण नहीं हैं ।

ग़फ़ूर ने कहा--महाराज, क्या करूँ, मैं बहुत ही लाचारी में पड़ गया हूँ । मुझे कई दिन से बुख़ार आ रहा है । मैं चाहता हूँ कि इसका पगहा पकड़कर इसे कहीं ले जाकर ज़रा चरा लाऊँ । लेकिन सिर में ऐसा चक्कर आ रहा है कि गिर-गिर पड़ता हूँ ।

तर्क०--तो फिर इसे खोल दो । यह आप ही जाकर चर आवेगा ।

गफ़ूर--महाराज, मैं इसे कहाँ छोड़ूँ ! अभी लोगों के धान की दँवाई नहीं हुई है । अपना पुआल भी लोगों ने खलिहान से नहीं हटाया है । मैदान की सारी घास जल गई है । कहीं एक मुट्ठी घास नहीं है । कहीं किसी के धान में मुँह डालेगा तो कहीं किसी की राशि में से खाने लगेगा । अब भला महाराज, मैं इसे कैसे छोड़ सकता हूँ ?

तर्करत्न ने कुछ नरम होकर कहा--अगर तुम इसे नहीं छोड़ सकते हो तो कहीं ठंढे में ही इसे बाँध दो और दो आँटी पुआल ही इसके आगे डाल दो । तब तक वही चबावेगा । तुम्हारी लड़की ने अभी भात नहीं बनाया है ? ज़रा-सा माँड़ ही उसके आगे डाल दो । वही खाय ।

लेकिन ग़फ़ूर ने कोई जवाब नहीं दिया । उसने निरुपायों की भाँति एक बार तर्करत्न के मुँह की ओर देखा और तब स्वयं उसके मुख से केवल एक दीर्घ निःश्वास निकला ।

तर्करत्न ने कहा--मालूम होता है कि वह भी नहीं है। आखिर तुमने अपना धान क्या किया? तुम्हें हिस्से में जो कुछ मिला था, वह सब बेचकर पेटाय नमः कर डाला? गोरू के लिए एक आँटी भी बचाकर न रखा? क़साई कहीं का!

यह निष्ठुर अभियोग सुनकर ग़फ़ूर की मानो बोली ही बन्द हो गई। थोड़ी देर बाद उसने धीरे धीरे कहा--जो पन्द्रह-सोलह मन धान इस बार हिस्से में मिला था, वह भी पिछले साल के बक़ाया लगान में मालिक ने ले लिया। मैंने बहुत रो-धोकर और हाथ पैर जोड़कर कहा कि बाबूजी, आप हाकिम ठहरे, आपका राज छोड़कर मैं कहाँ जाऊँगा, और कुछ नहीं तो चार मन पुआल ही मुझे दे दो। छप्पर पर फूस तक नहीं है। खाली एक कोठरी है। उसी में बाप-बेटी दोनो रहते हैं। और कुछ नहीं होगा तो ताड़ के पत्तों से ही उसे छाकर यह बरसात किसी तरह बिता दूँगा। लेकिन खाने को कुछ न मिलेगा तो मेरा महेश मर जायगा।

तर्करत्न ने हँसते हुए कहा--वाह! बड़े शौक़ से इसका नाम रखा गया है महेश! मेरा तो मारे हँसी के दम निकला जाता है।

लेकिन यह हँसी ग़फ़ूर के कानों में नहीं पहुँची। वह कहने लगा--लेकिन मालिक की मुझपर दया नहीं हुई। उन्होंने सिर्फ दो महीने खाने भर को धान मुझे दिया और बाक़ी सब अपनी खत्ती में भरवा लिया। हम लोगों को उसमें से एक तिनका भी नहीं मिला।

इतना कहते-कहते ग़फ़ूर का कंठ-स्वर आँसुओं के भार से भारी हो गया; लेकिन तर्करत्न के मन में इतने पर भी करुणा का उदय नहीं हुआ। उन्होंने कहा--तुम भी खूब मज़े के आदमी हो! उनका खाकर बैठे हो, दोगे नहीं? जमींदार क्या तुम्हें अपने घर से खिलावेंगे? तुम लोग तो राम-राज्य में रहते हो। नीच जात हो कि नहीं; इसीलिए उनकी निन्दा करने में ही मरे जाते हो।

ग़फ़ूर ने लज्जित होकर कहा--महाराज, भला मैं उनकी निन्दा क्यों करने लगा! हम लोग उनकी निन्दा तो नहीं करते; लेकिन आप ही बतलाइये कि मैं दूँ कहाँ से। कोई चार बीघे ज़मीन है। उसी में सीर में खेती करता हूँ। लेकिन इधर लगातर दो बरस कुछ भी पैदावार नहीं हुई। खेत का धान खेत में ही सूख गया। यहाँ बाप-बेटी को दोनों समय पेट भर खाने तक को नहीं मिलता। ज़रा घर की तरफ देखिये। पानी-बूँदी में लड़की को लेकर एक कोने में बैठा-बैठा रात

बिता देता हूँ । पैर फैलाकर सोने तक की जगह नहीं मिलती । जरा इस महेश को ही देखिये, इसकी हड्डी-पसलियाँ तक गिनी जा सकती हैं । महाराज, आप ही दो मन धान उधार दे दीजिये । ज़रा गोरू को भी दो-चार दिन भर-पेट खिलाऊँ ।

इतना कहता हुआ ग़फ़ूर झट से हाथ जोड़कर ब्राह्मण के पैरों के पास बैठ गया । तर्करत्न तीर की तरह दो क़दम पीछे खिसक गये और बोले--मर कम्बख़्त ! क्या मुझे छू ही लेगा ?

ग़फ़ूर—नहीं महाराज, मैं छूने क्यों लगा ? छूऊँगा नहीं । लेकिन इस समय मुझे दो मन धान दे दो । उस दिन मैं आपके यह चार-चार राशियाँ देख आया हूँ । मुझे मन दो मन देने से आपको कुछ पता भी न चलेगा कि किसी को कुछ दिया है । अगर हम लोग भूखों भी मर जायँ, तो कोई हर्ज नहीं । लेकिन यह बेचारा बे-ज़बान जानवर है । मुँह से कुछ कह भी नहीं सकता, चुपचाप खड़ा-खड़ा देखता रहता है । और इसकी आँखों से पानी गिरता है ।

तर्करत्न ने कहा—तुम उधार माँगते हो न ? लेकिन यह तो बतलाओ कि यह उधार चुकाओगे कैसे ?

ग़फ़ूर आशान्वित होकर व्यग्र स्वर से कहने लगा—महाराज, जिस तरह से होगा, मैं चुका दूँगा । आपके साथ धोखेबाज़ी नहीं करूँगा ।

तर्करत्न ने मुख से एक प्रकार का शब्द करके ग़फ़ूर के व्याकुल स्वर का अनुकरण करते हुए और मानो उसका मुँह चिढ़ाते हुए कहा—धोखेबाज़ी नहीं करूँगा ! जिस तरह से होगा चुका दूँगा ! तुम बड़े चालाक हो । चल हट, रास्ता छोड़ । मैं घर जाऊँ ; दिन ढलने लगा है ।

इतना कहकर तर्करत्न मुँह बिचकाकर मुस्कराते हुए आगे बढ़े ; लेकिन तुरन्त ही डरकर पीछे हटे और बिगड़कर बोले—कम्बख़्त कहीं का ! यह तो सींग हिलाता हुआ आगे बढ़ रहा है । कहीं मारेगा तो नहीं ?

ग़फ़ूर उठकर खड़ा हो गया । ब्राह्मण के हाथ में फल-मूल और भींगे चावलों की पोटली थी । वह पोटली बैल को दिखलाते हुए उन्होंने कहा--इसी की महक लगी है । इसी में से मुट्ठी भर खाना चाहता है । खाना चाहता है ? हो सकता है । जैसा खेतिहर है, वैसा ही उसका बैल भी ठहरा । भूसा तक तो खाने को नहीं मिलता और खाना चाहता है चावल और केला । चलो, इसे रास्ते में से हटाकर

बाँधो। इसके ऐसे सींग हैं कि मालूम होता है कि किसी दिन किसी का खून ही कर डालेगा।

इतना कहते हुए तर्करत्न महाशय कुछ कतराकर वहाँ से जल्दी-जल्दी पैर बढ़ाते हुए चले गये।

गफूर उस ओर से दृष्टि हटाकर कुछ देर तक चुपचाप महेश के मुख की ओर देखता रहा। उसके घने गहरे काले दोनों नेत्र वेदना और क्षुधा से भरे हुए थे। गफूर ने उससे कहा—तुम्हें उन्होंने एक मुट्ठी भी न दिया? उनके पास है तो बहुत-सा; लेकिन फिर भी वह किसी को नहीं देते। जाने दो, न दें!

इतना कहते-कहते गफूर का गला भर आया और इसके बाद उसकी आँखों से टप-टप आँसू बहने लगे। उसने महेश के और भी पास पहुँचकर उसके गले, सिर और पीठ पर हाथ फेरते हुए धीरे-धीरे कहना आरम्भ किया—महेश, तुम मेरे बेटे हो। तुम आठ बरस तक हम लोगों का प्रतिपालन करके बुड्ढे हुए हो। लेकिन फिर भी मैं तुम्हें पेट भर खाने को भी नहीं दे सकता। लेकिन तुम यह तो जानते ही हो कि मैं तुम्हें कितना अधिक चाहता हूँ।

इसके उत्तर में महेश केवल अपनी गरदन आगे बढ़ाकर चुपचाप आँखें बन्द करके खड़ा रहा। गफूर ने अपनी आँखों का जल उस बैल की पीठ पर गिराकर और तब उसे पोंछकर फिर उसी प्रकार अस्फुट स्वर में कहना आरम्भ किया—जमींदार ने तुम्हारे मुँह का खाने को छीन लिया। श्मशान के पास गाँव की जो थोड़ी-सी चराई की जमीन थी, उसका भी उन्होंने पैसे के लोभ से बन्दोबस्त कर दिया। अब तुम्हीं बतलाओ कि इस अकाल के समय मैं तुम्हें किस तरह खिलाकर जीता रखूँ? अगर मैं तुम्हें छोड़ दूँ तो तुम जाकर दूसरों की राशि में से खाने लगोगे—लोगों के केलों के पेड़ पर मुँह मारने लगोगे। अब मैं तुम्हारे लिए क्या करूँ? अब तुम्हारे शरीर में बल नहीं है, यहाँ कोई तुम्हें लेना नहीं चाहता। लोग तुम्हें गौ-हट्टे में ले जाकर बेच देने के लिए कहते हैं।

मन ही मन यह बात कहते-कहते उसकी आँखों से फिर टप-टप आँसू बहने लगे। इसके बाद उसने अपनी टूटी हुई झोपड़ी के पिछवाड़े से थोड़ा-सा पुराना और विवर्ण खर लाकर उसके मुँह के आगे रख दिया और धीरे से कहा—लो भइया, जल्दी से थोड़ा-सा खा लो। देर होने से फिर...

इतने में उसकी लड़की ने पुकारा—अब्बा !

'क्या है बेटी ?'

'आओ, भात खा लो।'

इतना कहकर अमीना घर से निकलकर बाहर दरवाजे पर आ खड़ी हुई। क्षण ही भर में उसने सब कुछ देखकर कहा—क्यों अब्बा, तुमने फिर महेश को छप्पर में से निकालकर खर दिया है ?

गफूर के मन में पहले से ठीक यही भय हो रहा था। उसने लज्जित होकर कहा—बेटी, पुराना सड़ा हुआ खर था। वह आप ही गिरा जा रहा था...

'अब्बा, मैं अन्दर से सुन रही थी। अभी-अभी तो तुमने खींचकर निकाला है।'

'नहीं बेटी, मैंने खींचा नहीं, बल्कि...'

'लेकिन अब्बा, दीवार जो गिर जायेगी।'

गफूर चुप रह गया। यह बात स्वयं उससे बढ़कर और कौन जानता था कि इस छोटे-से घर को छोड़कर और उसका सब कुछ चला गया है और इस तरह करने से अगली बरसात में यह भी न रह जायगा और फिर इस तरह करने से भी आखिर कितने दिनों तक काम चल सकता था ?

लड़की ने कहा—अब्बा, हाथ धोकर आओ और भात खा लो। मैं परोस देती हूँ।

गफूर ने कहा—बेटी, जरा माँड़ मुझे दे दो, पहले इसे पिला लूँ तो चलूँ।

'अब्बा, माँड़ तो आज नहीं है। वह तो हाँड़ी में ही सूख गया !'

माँड़ भी नहीं है ? गफूर चुप हो रहा। वह बात उस दस बरस की लड़की की समझ में भी आ गयी थी कि विपत्ति के दिनों में जरा-सी चीज भी नष्ट नहीं की जानी चाहिए। वह हाथ धोकर कोठरी के अन्दर जा खड़ा हुआ। पीतल की एक थाली में पिता के लिए शाकान्न सजाकर कन्या ने स्वयं अपने लिए मिट्टी की एक सनहकी में थोड़ा-सा भात परोस लिया था। कुछ देर तक देखने के बाद गफूर ने धीरे-धीरे कहा—बेटी अमीना, मुझे फिर जाड़ा मालूम हो रहा है। बुखार की हालत में खाना क्या अच्छा होगा ?

अमीना ने उद्विग्न होकर कहा—लेकिन उस वक्त तो तुमने कहा था कि बहुत भूख लगी है।

'उस वक्त ? उस वक्त बेटी, शायद बुखार नहीं था।'

'अच्छा तो फिर उठाकर रखे देती हूँ। शाम को खा लेना।'

गफूर ने सिर हिलाकर कहा—लेकिन बेटी अमीना, बासी भात खाने से तो बीमारी और बढ़ जायगी।

अमीना ने पूछा—तो फिर ?

गफूर ने न मालूम क्या सोचकर सहसा इस समस्या की एक मीमांसा कर डाली, उसने कहा—बेटी, एक काम करो। न हो तो यह भात जाकर महेश के ही आगे रख आओ। क्यों अमीना, रात को मुझे एक मुट्ठी भात न पका दोगी ?

उत्तर में अमीना ने सिर उठाकर कुछ देर तक चुपचाप पिता के मुँह की ओर देखा और तब सिर झुकाकर धीरे-धीरे गरदन हिलाकर कहा—हाँ अब्बा, पका दूँगी।

गफूर का चेहरा तमक उठा। पिता और कन्या के बीच में जो यह छलना का थोड़ा-सा अभिनय हो गया था, उसे इन दोनों के सिवाय शायद एक और कोई भी अन्तरिक्ष से देख रहा था।

(२)

इसके पाँच-सात दिन बाद बीमार गफूर एक रोज चिन्तित भाव से दरवाजे पर बैठा हुआ था। उसका महेश कल से अभी तक लौटकर घर नहीं आया था। स्वयं उसके शरीर में तो शक्ति थी ही नहीं, इसलिए सवेरे से अमीना ही उसे चारों तरफ ढूँढ़ती फिरती थी। दोपहर के बाद वह लौट आई और बोली—अब्बा, सुनते हो, माणिक घोष ने महेश को थाने में भेज दिया है।

गफूर ने कहा—दुत् पगली !

'नहीं अब्बा, मैं ठीक कहती हूँ। उनके नौकर ने कहा कि अपने अब्बा से जाकर कह दो कि दरियापुर के कानीहौस में जाकर ढूँढ़े।'

'उसने क्या किया था ?'

'उनके बाग में घुसकर उसने वहाँ के पेड़-पौधे खराब कर डाले थे।'

गफूर स्तब्ध होकर बैठा रहा। उसने अब तक मन ही मन महेश के सम्बन्ध में अनेक प्रकार की दुर्घटनाओं की कल्पना की थी ; लेकिन यह आशंका उसे नहीं हुई थी। वह जैसा निरीह था, वैसा ही गरीब भी था ; और इसीलिए उसे इस बात का भी भय नहीं हुआ था कि मेरा कोई पड़ोसी मुझे इतना बड़ा दंड भी दे सकता है। और विशेषतः माणिक घोष ! इस प्रान्त में तो वह अपनी गौ-ब्राह्मण-भक्ति के लिए प्रसिद्ध था।

लड़की ने कहा—अब्बा, दिन ढल रहा है। तुम महेश को लाने के लिए नहीं जाओगे ?

गफूर ने कहा—नहीं।

'लेकिन उन लोगों ने तो कहा था कि अगर तीन दिन तक कोई उसे लेने नहीं जायगा तो पुलिसवाले उसे गौ-हट्टे में बेच डालेंगे।'

गफूर ने कहा—बेच डालें।

अमीना यह तो नहीं जानती थी कि गौ-हट्टा असल में क्या चीज है ; लेकिन वह अनेक बार यह अवश्य देख चुकी थी कि जब कभी महेश के बारे में गौ-हट्टे का जिक्र आता था, तो उसका पिता बहुत अधिक विचलित हो जाता था ; लेकिन आज गौ-हट्टे का नाम सुनकर भी उसका पिता चुपचाप वहाँ से अन्दर चला गया था।

जब रात हो गई और चारों तरफ अँधेरा छा गया, तब गफूर चोरी से वंशी की दूकान पर जा पहुँचा और उससे कहने लगा—चाचा, तुम्हें एक रुपया देना होगा।

यह कहकर गफूर ने अपनी पीतल की थाली वंशी के बैठने की मचिया के नीचे रख दी। उस थाली की तौल वगैरह वंशी बहुत अच्छी तरह जानता था। इधर दो बरसों के बीच में उसने यह थाली अपने पास रेहन रखकर कोई पाँच बार उसे एक रुपया उधार दिया था। इसीलिए आज भी उसने कोई आपत्ति नहीं की।

दूसरे दिन महेश फिर अपनी जगह पर दिखाई देने लगा। वही बबूल का पेड़, वही पगहा, वही खूँटा, वही तृणहीन शून्य आधार और वही क्षुधातुर काले नेत्रों की सजल उत्सुक दृष्टि। एक बुड्ढा मुसलमान बहुत ही तीव्र दृष्टि से उसका

निरीक्षण कर रहा था। पास ही एक तरफ दोनो घुटने सटाकर गफूर चुपचाप बैठा हुआ था। भलीभाँति परीक्षा कर चुकने के बाद उस बुड्ढे मुसलमान ने अपनी चादर के पल्ले में से दस रुपए का एक नोट निकाला और उसकी तह खोल-कर और कई बार उसे मसलकर अन्त में गफूर के पास पहुँचकर कहा—अब मैं इसे भुनाने नहीं जाऊँगा। लो, पूरा-पूरा ले लो।

गफूर ने हाथ बढ़ाकर वह नोट ले लिया और चुपचाप ज्यों-का-त्यों वहीं बैठा रहा। उस बुड्ढे के साथ जो और दो आदमी आये थे, वे ज्योंही बैल का पगहा खोलने का उद्योग करने लगे, त्योंही वह अचानक उठकर सीधा खड़ा हो गया और उद्धत स्वर से बोल उठा—खबरदार! कहे देता हूँ, पगहे में हाथ मत लगाना। नहीं तो अच्छा न होगा।

वे लोग भी चौंक पड़े। बुड्ढे ने चकित होकर पूछा—क्यों?

गफूर ने फिर उसी प्रकार बिगड़कर जवाब दिया—क्यों और क्या! मेरी चीज़ है, मैं नही बेचूँगा। मेरी खुशी।

यह कहकर गफूर ने नोट दूर फेंक दिया।

उन लोगों ने कहा—कल तो रास्ते में तुम बयाना ले आये थे।

'यह लो, अपना बयाना वापस लो।'

यह कहकर गफूर ने कमर में से दो रुपए निकालकर झन से दूर फेंक दिये। जब उस बुड्ढे ने देखा कि एक झगड़ा खड़ा होना चाहता है, तब उसने हँसते हुए धीर भाव से कहा—इस तरह चाँप चढ़ाकर दो रुपए और ले लोगे। बस यही न? दे दो जी, लड़की के हाथ में मिठाई खाने के लिए दो रुपए और दे दो। क्यों यही न?

'नहीं।'

लेकिन यह भी जानते हो कि इससे ज़्यादा एक अधेला भी कोई न देगा?

गफूर ने खूब जोर से सिर हिलाकर कहा—नहीं।

बुड्ढे ने कुछ नाराज़ होकर कहा—और नहीं तो क्या? इसके चमड़े का ही जो कुछ दाम वसूल होगा, वह होगा। और नहीं तो और माल है ही क्या।

तौबा! तौबा! गफूर के मुँह से सहसा एक गन्दी बात निकल गई। वह तुरन्त ही दौड़कर अपने घर के अन्दर जा छिपा और वहीं से चिल्लाकर उन लोगों

को डराने लगा कि अगर तुम लोग तुरन्त ही इस गाँव से चले नहीं जाओगे तो मैं जमींदार को बुलवा भेजूँगा और तुम लोगों को जूते से पिटवाकर छोड़ूँगा।

यह बखेड़ा देखकर वे सब लोग चले गये। लेकिन कुछ ही देर बाद ज़मींदार की कचहरी में उसकी बुलाहट हुई। गफ़ूर ने समझ लिया कि यह बात मालिक के कानों तक पहुँच गई।

जमींदार की कचहरी में अच्छे-बुरे सभी तरह के बहुत-से लोग बैठे हुए थे। शिब्बू बाबू ने लाल-लाल आँखें करके कहा—क्यों बे गफ़ूर, मेरी तो समझ में ही नहीं आता कि आज मैं तुझे क्या सजा दूँ। तू जानता है कि तू कहाँ रहता है!

गफ़ूर ने हाथ जोड़कर कहा—जी हाँ जानता हूँ। हम लोगों को तो भरपेट खाने को भी नहीं मिलता। और नहीं तो आज आप मुझे जो कुछ जुरमाना करते, वह दे देता और कभी 'नहीं' न करता।

सभी लोग बहुत विस्मित हुए। सब लोग यही समझते थे कि गफ़ूर बहुत ही जिद्दी और बहुत बढ़ा बद-मिजाज है। उसे रुलाई आने लगी और उसने कहा—सरकार, अब मैं ऐसा काम कभी न करूँगा।

इतना कहकर गफ़ूर ने स्वयं ही अपने हाथों से अपने दोनों कान पकड़े और आँगन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक नाक रगड़ता हुआ चला गया और तब फिर उठकर खड़ा हो गया।

शिब्बू बाबू ने सदय स्वर से कहा—अच्छा जा, जा। हो गया। देख, अब कभी इस तरह की बात भी खयाल में मत लाना।

यह हाल सुनकर सभी लोग मारे आनन्द के कन्टकित हो गये। किसी के मन में इस बात का तनिक भी सन्देह न रह गया कि यह महापातक केवल जमींदार के पुण्य-प्रभाव और शासन-भय से ही निवारित हुआ है। तर्करत्न महाशय वहाँ उपस्थित थे। उन्होंने 'गो' शब्द की शास्त्रीय व्याख्या कर सुनाई और जिस उद्देश्य से इस धर्म-ज्ञान-हीन म्लेच्छ जाति के लिए गाँव की सीमा के अन्दर बसाने का निषेध किया गया है, वह उद्देश्य भी सब लोगों को बतला दिया; और इस प्रकार उन्होंने मानो सब लोगों के ज्ञान-नेत्र विकसित कर दिये।

गफ़ूर ने किसी की एक बात का भी कोई उत्तर नहीं दिया। उसने समझ लिया कि यहाँ मेरा जितना अपमान और तिरस्कार हुआ है, वस्तुतः मैं उसका

पात्र था और वह मेरा प्राप्य था ; और इसीलिए वह सारा अपमान और सारा तिरस्कार शिरोधार्य करके प्रसन्न-चित्त होकर घर लौट आया। उसने अपने पड़ोसियों के यहाँ से माँड़ माँगकर महेश को पिलाया और वह उसके शरीर, मस्तक तथा सींगों पर बार-बार हाथ फेरकर अस्फुट स्वर में न जाने कितनी ही बातें कहने लगा।

(३)

ज्येष्ठ मास समाप्ति पर आ रहा था। आज के आकाश की तरफ बिना देखे इस बात का किसी तरह पता लग ही नहीं सकता था कि धूप की जिस मूर्त्ति ने एक दिन वैशाख के अन्त में आत्म-प्रकाश किया था, वह कितनी अधिक भीषण और कितनी अधिक कठोर हो सकती है। करुणा का कहीं मानो आभास तक नहीं दिखाई देता था। आज मानो यह बात सोचते हुए भी डर लगता था कि कभी इस रूप में लेश-मात्र भी परिवर्त्तन हो सकता है और किसी दिन यह आकाश मेघ के कारण स्निग्ध और सजल भी दिखाई दे सकता है। ऐसा जान पड़ता था कि जो अग्नि समस्त नभःस्थल में व्याप्त होकर धधक रही है, उसका कहीं अन्त और कहीं समाप्ति नहीं है, और अन्त में जब तक सब कुछ दग्ध न हो जायगा, तब तक इस आग का धधकना बन्द न होगा।

ऐसे ही एक दिन दोपहर के समय गफूर लौटकर अपने घर आया। दूसरे के दरवाजे पर जाकर मेहनत मजदूरी करने की उसकी आदत नहीं थी, और तिस पर अभी चार ही पाँच दिन पहले उसे बुखार ने छोड़ा था। उसका शरीर जितना ही दुर्बल था, उतना ही श्रान्त भी था, तो भी वह आज काम ढूँढने के लिए ही घर से निकला था। किन्तु केवल यह प्रचंड धूप ही उसके सिर पर जाकर पड़ी थी, इसके सिवा और कोई फल नहीं हुआ था। मारे भूख, प्यास और थकावट के उसकी आँखों के आगे अँधेरा छा रहा था। आँगन में खड़े होकर उसने पुकारा—अमीना, भात बन गया ?

लड़की अन्दर से निकलकर बाहर आई और बिना कोई उत्तर दिये चुपचाप खड़ी हो गई।

कोई उत्तर न पाकर गफूर ने फिर चिल्लाकर पूछा—अरे भात बना है ? क्या कहा ? नहीं बना ? क्यों नहीं बना ?

'अब्बा, घर में चावल नहीं है।'

'चावल नहीं है ? तो फिर सवेरे मुझसे क्यों नहीं कहा ?'

'मैंने तो रात को ही तुमसे कह दिया था।'

गफूर ने उसका मुँह चिढ़ाते हुए और उसके कंठ-स्वर का अनुकरण करते हुए कहा— रात को ही कह दिया था ! रात की कही हुई बात किसी को याद रहती है ?

स्वयं उसके कर्कश कंठ के कारण उसका क्रोध और भी दूना हो गया था। उसने अपना मुँह और भी अधिक बिगाड़कर कहा—चावल बचेगा कहाँ से ? बीमार बुड्ढा बाप चाहे खाय और चाहे न खाय, लेकिन जवान लड़की को तो चार-चार पाँच-पाँच बार भात खाने को चाहिये ! अब आगे से मैं ताले में बन्द करके रखा करूँगा। लाओ एक लोटा पानी दो। प्यास के मारे कलेजा फटा जा रहा है। कह दो, वह भी नहीं है।

अमीना अब भी पहले की तरह चुपचाप सिर झुकाये खड़ी रही। थोड़ी देर तक प्रतीक्षा करने के बाद जब गफूर ने समझ लिया कि घर में प्यास बुझाने के लिए पानी भी नहीं है, तब वह अपने आपको रोक न सका। उसने जल्दी से आगे बढ़कर और अमीना के गाल पर तड़ से एक थप्पड़ जड़कर कहा—मुँहजली, हरामजादी, दिन भर तू क्या करती रहती है ? दुनिया में इतने आदमी मरते हैं, लेकिन तुझे मौत नहीं आती।

लड़की ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वह मिट्टी का खाली घड़ा उठाकर अपनी आँखें पोंछती हुई उसी तेज धूप में निकल पड़ी। लेकिन उन आँखों की ओट से ही मानो एक तीर आकर गफूर के कलेजे में लगा। उसकी मा के मर जाने पर इस लड़की को जिस तरह उसने पाल-पोसकर बड़ा किया था, उसका हाल सिर्फ वही जानता था। उस समय उसे ध्यान हुआ कि मेरी इस स्नेहशीला, कर्म-परायणा और शान्त कन्या का कुछ भी दोष नहीं है। खेत में से जो थोड़ा-सा अन्न आया था, वह जब से समाप्त हो गया है, तब से हम लोगों को दोनों समय भरपेट अन्न ही नहीं मिलता। किसी दिन एक बार भोजन होता है और किसी दिन वह भी नहीं। दिन में पाँच-छः बार जिस प्रकार भात खाना असम्भव है, उसी प्रकार मिथ्या भी है। और प्यास बुझाने के लिए जल न होने का कारण भी उसे अविदित

नहीं था। गाँव में जो दो-तीन ताल थे, वे सब एकदम से सूख गये थे। शिवचरण बाबू के मकान के पास जो ताल था, उसका पानी सब लोगों को नहीं मिल सकता था। अन्यान्य जलाशयों के बीच में जो दो-एक गड्ढे खोदकर थोड़ा बहुत जल संचित किया जाता था, उसके लिए जितनी ही छीना-झपटी होती थी, उतनी ही उसके पास भीड़ भी होती थी। और विशेषतः मुसलमान होने के कारण तो यह लड़की उन गढ्ढों के पास भी नहीं पहुँच सकती थी। घन्टों दूर खड़े रहने पर और लोगों से बहुत कुछ अनुनय-विनय करने पर जब कोई दया करके उसके बरतन में थोड़ा-सा जल डाल देता था, तब वही जल लेकर वह घर लौट आया करती थी। ये सभी बातें गफूर जानता था। हो सकता है कि आज वहाँ जल रहा ही न हो, या अपनी छीना-झपटी में किसी को उस लड़की पर दया करने का अवसर ही न मिला हो। गफूर ने समझ लिया कि अवश्य ही आज इसी तरह की कोई बात हुई होगी। यही बात ध्यान में आने के कारण उसकी आँखों में भी जल भर आया। ठीक उसी समय जमींदार का प्यादा यम-दूत की तरह आकर आँगन में खड़ा हो गया और चिल्लाकर पुकारने लगा—ए गफूर, घर में हो?

गफूर ने कुछ तिक्त स्वर से उत्तर दिया—हाँ। क्या है?

'बाबूजी बुलाते हैं। चलो।'

गफूर ने कहा—अभी मैंने कुछ खाया-पीया नहीं है। थोड़ी देर में आऊँगा।

गफूर की इतनी बड़ी गुस्ताखी प्यादा बरदाश्त न कर सका। उसने एक कुत्सित सम्बोधन करके कहा—बाबूजी का हुकुम है कि जूते मारते हुए घसीटकर ले आओ।

गफूर फिर दोबारा आत्म-विस्मृत हुआ। उसने भी कुछ दुर्वाक्य का उच्चारण करके कहा—मलका के राज्य में कोई किसी का गुलाम नहीं है। मैं लगान देकर यहाँ बसता हूँ। मैं नही जाऊँगा।

लेकिन संसार में ऐसे क्षुद्र व्यक्ति का इतनी बड़ी दुहाई देना केवल विफल ही नहीं होता, बल्कि विपत्ति का भी कारण होता है। खैरियत यही थी कि इतना क्षीण स्वर उतने बड़े कानों तक जाकर पहुँचा नहीं था। नहीं तो उसके मुँह के अन्न और आँखों की नींद का कहीं ठिकाना ही न रह जाता। इसके बाद जो कुछ हुआ, वह विस्तार पूर्वक बतलाने की आवश्यकता नहीं। लेकिन इसके कोई

घण्टे भर बाद जब वह ज़मींदार की कचहरी से लौटकर घर आया था और आकर चुपचाप पड़ गया था, तब उसका मुँह और आँखें सूजी हुई थीं। उसके इतने बड़े दंड का कारण मुख्यतः महेश था। सवेरे गफ़ूर जब घर से चला गया था, तब महेश भी पगहा तुड़ाकर बाहर निकल पड़ा था और जमींदार के आँगन में घुसकर उसने वहाँ के फूलों के कई पौधे खा डाले थे और जो धान वहाँ सूख रहा था, उसे तितर-बितर और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया था। और अन्त में जब लोगों ने उसे पकड़ना चाहा था, तब वह बाबू साहब की छोटी लड़की को जमीन पर पटककर भाग आया था। इस प्रकार की यह कोई पहली घटना नहीं थी। इससे पहले भी कई बार ऐसी ही घटनाएँ हो चुकी थीं। लेकिन पहले उसे सिर्फ़ गरीब समझकर माफ़ कर दिया गया था। अगर वह इस बार भी पहले की ही तरह आकर हाथ-पैर जोड़ता तो उसे माफ़ कर दिया जाता; लेकिन उसने जो प्यादे से यह कह दिया था कि मैं लगान देकर बसता हूँ और किसी का गुलाम नहीं हूँ, वही उसकी दुर्दशा का कारण हुआ था। प्रजा के मुँह से इतनी बड़ी गुस्ताखी की बात सुनकर शिवचरण बाबू किसी तरह बरदाश्त न कर सके थे। वहाँ के प्रहार और लांछना का गफ़ूर ने कुछ भी प्रतिवाद नहीं किया था और अपना मुँह बन्द किये था। घर आकर भी वह उसी तरह चुपचाप पड़ गया। भूख और प्यास का तो उसे कुछ भी ध्यान नहीं रह गया था, लेकिन उसका अन्तःकरण बाहर के दोपहर के आकाश की ही तरह जल रहा था। इस बात का उसे कुछ भी होश न रहा कि इस तरह कितना समय बीत गया; लेकिन जब आँगन में से अचानक उसे अपनी कन्या का आर्त्त स्वर सुनाई पड़ा, तब वह जल्दी से उठकर खड़ा हो गया और दौड़ा हुआ बाहर निकल आया। वहाँ आकर उसने देखा कि अमीना जमीन पर गिरी हुई है, उसका घड़ा फूट गया है और उसमें का जल इधर-उधर बह रहा है। और महेश जमीन पर मुँह लगाकर वह जल पी रहा है। पलक भी झपकने नहीं पाई थी कि गफ़ूर आपे से बाहर हो गया। मरम्मत करने के लिए कल ही उसने अपने हल की मुठिया निकाली थी। वही मुठिया उसने दोनों हाथों से पकड़कर महेश के अवनत मस्तक पर जोर से आघात किया।

महेश ने सिर्फ एक ही बार सिर ऊपर उठाने की चेष्टा की और इसके बाद उसका अनाहार से क्लिष्ट और जीर्ण-शीर्ण शरीर जमीन पर लोटने लगा। उसकी

आँखों के कोनों से आँसुओं की कुछ बूँदें भी उसके कानों पर से बह निकलीं, और उसके सिर से खून की कुछ बूँदें भी निकलीं। दो बार उसका सारा शरीर थर-थर करके काँप उठा और इसके बाद अगले और पिछले पैर जितनी दूर तक फैल सकते थे, उतनी दूर तक उन्हें पसारकर महेश ने अन्तिम निश्वास का त्याग किया।

अमीना ने रोते हुए कहा—अरे अब्बा, यह तुमने क्या किया ? हमारा महेश तो मर गया !

गफूर न तो अपनी जगह से हिला ही और न उसने कोई उत्तर ही दिया। वह अपने निर्निमेष नेत्रों से और एक जोड़े निमेष-हीन गम्भीर काले नेत्रों की ओर देखता हुआ पत्थर की भाँति निश्चल खड़ा रहा।

यह समाचार पाकर कोई दो घण्टे के अन्दर ही दूसरे गाँव से चमारों का एक दल वहाँ आकर एकत्र हो गया और वे लोग महेश को बाँस में बाँधकर वहाँ से उठा ले गये। उनके हाथों धारदार चमचमाते हुए छूरे देखकर गफूर सिहर उठा और उसने अपनी आँखें मूँद लीं; लेकिन मुँह से उसने एक बात भी नहीं कही।

गाँव के लोगों ने कहा कि तर्करत्न से व्यवस्था माँगने के लिए जमीदार ने अपना आदमी भेजा है। कहीं ऐसा न हो कि प्रायश्चित्त का खर्च जुटाने के लिए तुम्हें अपना घर-बार तक बेचना पड़े।

लेकिन गफूर ने इन सब बातों का कोई उत्तर नहीं दिया। वह अपने दोनों घुटनों के ऊपर सिर रखकर जहाँ का तहाँ बैठा रहा।

बहुत रात बीत जाने पर गफूर ने अपनी लड़की अमीना को जगाकर कहा—अमीना, चलो हम लोग चलें।

वह दैरवाजे के पास सोई हुई थी। आँखें मलती हुई वह उठकर बैठ गई और बोली—कहाँ चलोगे अब्बा ?

गफूर ने कहा—फूलबेड़ा के जूट के कारखाने में काम करने के लिए।

लड़की चकित होकर देखती रह गई। इससे पहले बहुत कुछ दुःख पड़ने पर भी उसका पिता कभी कारखाने में काम करने के लिए तैयार नहीं होता था। वह कहा करता था कि वहाँ धर्म, ईमान कुछ भी नहीं रह जाता; औरतों की इज्जत-आबरू नहीं रह जाती। उसके मुँह से इसी तरह की बातें वह कई बार सुन चुकी थी।

गफूर ने कहा—जल्दी चलो बेटी। देर मत करो। अभी बहुत दूर जाना है।

अमीना पानी पीने का बधना और पिता के भात खाने की पीतल की थाली साथ ले चलना चाहती थी; लेकिन गफूर ने उसे मना किया और कहा—बेटी, ये सब चीज़ें यहीं रहने दो। इनसे हमारे महेश का प्रायश्चित्त होगा।

अन्धकारपूर्ण गम्भीर निशा में अपनी लड़की का हाथ पकड़कर गफूर घर से बाहर निकला। इस गाँव में उसका कोई आत्मीय नहीं रहता था, इसलिए उसे किसी से कुछ कहने-सुनने की भी कोई ज़रूरत नहीं थी। आँगन से निकलकर और बाहर रास्ते के पास उसी बबूल के पेड़ के नीचे पहुँचकर वह रुक गया और जोर-जोर से रोने लगा। नक्षत्र-खचित कृष्ण आकाश की ओर सिर उठाकर उसने कहा—या अल्लाह! मुझे तू जो चाहे वह सजा देना; लेकिन मेरा महेश प्यासा ही मर गया है। उसके चरने के लिए किसी ने जरा-सी भी जमीन नहीं छोड़ी थी। जिसने तुम्हारी दी हुई मैदान की घास उसे नहीं खाने दी और तुम्हारा दिया हुआ पानी तक उसे नहीं पीने दिया, उसका कसूर तुम कभी माफ न करना।

मृत्युदण्ड

शैलजानन्द मुखोपाध्याय

[शरत्चन्द्र के परवर्ती जो कहानी-लेखक तरुण कहलाते हैं, उनमें सबसे अधिक जन-प्रिय तथा शक्तिमान् शैलजानन्द हैं। इन्हें विशेष शिक्षा प्राप्त करने का अवसर नहीं मिला था। दरिद्र के घर में इनका जन्म हुआ था और इनका आरम्भिक जीवन कोयले की खान के दफ़्तर में और एक सौदागर के दफ़्तर में क्लर्की करने में ही बीता था। इनकी गल्प-रचना की स्वाभाविक शक्ति ने शरत्-साहित्य के प्रभाव से विशेष प्रकार से प्रकाशित होने की प्रेरणा पाई थी। इन्होंने रास्ता चलते समय और देश-विदेश में घूमने पर जिन स्त्रियों और पुरुषों के जीवन का परिचय प्राप्त किया था, उसने भी इस विषय में इनकी असाधारण सहायता की थी। शैलजानन्द ने सबसे पहले 'बिजली' नामक पत्रिका में लिखना आरम्भ किया था। इसके बाद 'कल्लोल', 'काली कलम' आदि पत्रिकाओं में इनकी अधितकर रचनाएँ प्रकाशित होती थीं। इनकी पहली रचना 'कोयला कुठी' नामक कहानी जिस समय प्रकाशित हुई थी, उसी समय चारो ओर इनकी विशेष ख्याति हो गई थी। सभी लोगों ने समझ लिया था कि ये बंगला साहित्य में एक नवीन शक्ति का विकास करनेवाले हैं। कुछ ही वर्षों में इनकी शक्ति पूर्ण रूप से विकसित होने के बाद फिर पीछे की ओर लौटने लगी थी। इनकी बिलकुल हाल की लिखी हुई कहानियाँ अनेक कारणों से प्रशंसनीय नहीं हैं। ये आजकल सिनेमा के स्टूडियो में नौकरी करते हैं।

शैलजानन्द की कहानियों में उन लोगों ने बहुत ही श्रद्धा और आदर-पूर्वक स्थान पाया है, जो समाज में सबसे नीचेवाले स्तर में हैं और जो हीन, नीच, पतित तथा अन्त्यज हैं। उनके सुख-दुःख, हानि-लाभ और भले-बुरे से सम्बन्ध रखनेवाली सभी बातें इन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखी हैं। ये स्वयं भी बहुत दिनों तक उन लोगों के साथ रह चुके हैं और कष्टकर जीविका-आहरण के कार्य में उनके साथ लगे रहे हैं और उन लोगों को असीम ममता की दृष्टि से देखने के अभ्यस्त हैं। इनकी इस सहानुभूति ने ही इनकी लेखनी में इतनी स्वभाविकता उत्पन्न कर दी है; किन्तु इस स्वाभावानुगमन ने इनकी रचनाओं को कई बड़े-बड़े

दोषों से भी युक्त कर दिया है। मानव जीवन की जिन दिशाओं को मनोविज्ञान के ज्ञाता एबनारमैलिटी (Abnormality) या प्रकृति-विरुद्धता कहते हैं, उसको भी इन्होंने बिना किसी संकोच के स्वीकार कर लिया है। उसके परिणाम-स्वरूप इनकी कहानियों में हत्या, आत्म-हत्या, बलात्कार और दूसरे अनेक प्रकार के कुकर्मों का स्पष्ट और नग्न वर्णन मिलता है। लेकिन इतना होने पर भी यह मानना ही पड़ता है कि गल्प-रचना में इन्हें असाधारण निपुणता प्राप्त है। कहानी कहाँ से आरम्भ करनी चाहिये, कहाँ उसका अन्त करना चाहिये, उसमें कितनी बातें दिखलानी चाहिये और कितनी व्यंजनाएँ प्रच्छन्न रखने से शिल्प की दृष्टि से कहानी उत्तम होती है, आदि बातों का मात्रा-बोध इन्हें बहुत अधिक है। जान पड़ता है कि इस विषय में शरत्चन्द्र से भी इनकी दृष्टि कहीं अधिक सजग है। इसके सिवा आधुनिक बँगला-साहित्य में ये सचमुच वाम-पन्थी (Leftist) लेखक हैं। व्यथितों कौर पतितों के सम्बन्ध में इनकी सहानुभूति, शौकीनी और भाव-विलसिता की नहीं है और न उसमें तीव्र कल्पना का ही प्रयोग हुआ है। यह उनके अन्तःकरण का और आप से आप स्फूर्त्त होनेवाला धर्म है। कुलियों, मजदूरों, सन्थालों, कोलों और डोमों आदि की जीवन-धारा के साथ इनका जितना घनिष्ट परिचय है और इन लोगों के प्रति इनमें जितना स्नेह है, वह इस देश के लेखकों में और किसी में नहीं दिखाई देता।]

मृत्युभय

लड़के के लिए स्वामी-स्त्री दोनों ही एकदम पागल हो उठे थे।

जो हो, भगवान् ने मुँह की लाज रखी है।

न हुआ न हुआ करते-करते शेष उम्र में सुरुचि को एक लड़का हुआ है। और ऐसा प्रतीत होता है, मानो गिरती आयु में होने के कारण वह देखने में इतना सुन्दर है।

लड़के के नामकरण में कैसा आनन्द!

हरिचरण कहता है, इसका नाम रखो कन्दर्प।

सुरुचि हँसते-हँसते चल पड़ती है। कहती है, हटाओ, हटाओ! वह भ क्या कोई नाम हुआ? लोग उसे केंदों केंदों* कहकर पुकारेंगे। छिः!

'तब—?'

'क्या नाम रखा जाय, बोलो तो?'

हरिचरण भी सोचता है। सुरुचि भी सोचती है। सोचते-सोचते वे हैं हैरान! कोई नाम किसी को पसन्द होता नहीं। अन्त में एक नाम ठीक हुआ। परन्तु वे उससे भी सन्तुष्ट न हुए।

सुरुचि ने कहा, पीछे बदल देने से ही होगा।

नाम हुआ—सुन्दर।

यह खराब नहीं हुआ।

उसे सुन्दर कहना ठीक होगा—जैसा रूप है वैसी ही बनावट भी। ऐसा लड़का सचराचर जगत की दृष्टि-पथ में न आया था। दप्दप् गौर वर्ण, काले-काले घुँघराले सर के बाल, बड़ी-बड़ी आँखें,—मुख के देखते ही प्यार करने की इच्छा होती है।

हरिचरण, सुरुचि और सुन्दर। इन्हीं तीन प्राणियों का छोटा-सा संसार! रास्ते के किनारे रेलिंगदार छोटा-सा मकान। उसके तीन-चार कमरे ही उनके

---

* केंदो बँगला का एक शब्द भी है जिसका अर्थ होता है 'रोओ'।

लिए यथेष्ट हैं। नीचे के कमरे किराये पर दिये गये हैं। जब लड़का न हुआ था तब अपने मन की साध मिटाने के लिए सुरुचि ने तोता खरीदा था। दूर से रेलिंग के ऊपर झूलती हुई चिड़िया अभी भी दिखलाई पड़ती है। वह अब सुन्दर के खेल की साथी है।

सुन्दर को गोद में लिये सुरुचि बरामदे में आ खड़ी होती है। पक्षी के साथ सुन्दर का परिचय करा देती है।

चिड़िया बोलती है, 'लल्ला!'

लल्ला बोलता है, 'तोता!'

सुरुचि हाथ उठाकर चिड़िया को धमकाती है। कहती है, लल्ला कहोगी तो तुम्हें मार डालूँगी। बोलो—सुन्दर।

चिड़िया कान लगा गर्दन घुमाकर सुनती है। सुन्दर के शरीर के ऊपर अपनी चोंच फेरती है। परन्तु वह 'सुन्दर' न बोल सकेगी।

हाथ उठाकर सुन्दर भी धमकाता है। कहता है, माउँगा!

इस 'माउँगा' में सुरुचि के आनन्द का ठिकाना नहीं—स्वामी को बुलाकर कहती है, सुनिये, जल्दी आइये।

हरिचरण दौड़कर पास आ खड़ा होता है।

सुरुचि कहती है, चिड़िया को और एक बार धमकी दो तो, बबुआ?

सुन्दर और धमकाता नहीं, चुपचाप रहता है।

हँसती हुई सुरुचि अपने स्वामी की ओर देख थोड़ा अप्रस्तुत भाव से कहती है, जाइये, जाइये! इतनी देर तक आये नहीं! और सुन न पाये। इसने चिड़िया को धमकाया था।

हरिचरण कहता है, यह लड़का जैसा होगा, बड़े होने पर हमारे ऊपर ही धमकी दिखावेगा।

सुरुचि कहती है, हाँ रे?

खुल्-खुल् हँसते हुए लड़का अपने दोनों कोमल हाथों को बढ़ा पिता की गोद में चला जाता है।

हरिचरण स्नेह के साथ चूमा लेकर कहता है, शरारती कहीं का!

सुरुचि कहती है, देखिये, मैं कहती हूँ उसे शरारती मत कहिये, वह मेरा दूध का धोया लड़का है। आओ तो बबुआ!—कहकर मा उसे उसके पिता की गोद से छीन लेती है।

इसी तरह इस प्रौढ़ दम्पति का दिन सुन्दर के साथ कटता है।

सुन्दर बड़ा होने लगा।

गत वर्ष का कुरता इस वर्ष और शरीर में नहीं आता।

सुरुचि कहती है, मैं किसी तरह सुन्दर को स्कूल में न भेजूँगी। समझ रहे हैं न?

हरिचरण हँसकर कहता है, घर पर बैठाकर उसे मूर्ख बनाकर रखने की राय है?

'नहीं, नहीं। मैं एक क्षण भी लड़के को बिना देखे नहीं रह सकती, इसके अलावा मैंने सुना है कि मास्टर लड़कों को मारते हैं।'

हरिचरण कहता है, अच्छा, घर पर ही मास्टर रख दूँगा।

सुरुचि कहती है, वही ठीक होगा। देखिये, बबुआ की स्त्री बबुआ को खूब प्यार करेगी।

अकस्मात् हरिचरण उस बात का अर्थ न समझ सका, पूछा, क्यों?

'यह देखिये न। इतने में ही लड़के की नाक पर पसीना * आ गया।'

सुरुचि कहती है, देखिये, ऐसी बहू लानी होगी जो देश भर में सबसे बढ़ी-चढ़ी होगी। खोज-खोजकर जहाँ से हो लाइये। बल्कि पैसा कौड़ी कुछ नहीं लेंगे।

हरिचरण विनोद करते हुए कहता है, तब तो अभी से खोजने के लिए बाहर जाऊँ। क्यों, क्या राय है?

सुरुचि हँसकर कहती है, हाँ, जाइये। क्यों, ऐसा तो बहुत होता है, लड़का होने के पहले ही कितने आदमी बात दे रखते हैं।

हरिचरण कहता है, आखीर में अगर सास-पतोहू में पटरी न खाय तब?

* जिसके नाक पर पसीना आता है उसे बंगाल में प्रेमी-स्वभाव का समझा जाता है। यह एक विश्वास है।

सुरुचि कहती है, हूँ ! मैं क्या वैसी ही सास हूँ ? झगड़ा करूँगी ?—हाँ रे बबुआ, तुम्हारी स्त्री मेरे साथ झगड़ा करेगी ?

इन सब बातों के समझने भर की उम्र अभी लड़के की न हुई थी। गर्दन हिलाकर कहता है, हाँ करेगी।

हरिचरण हँसकर कहता है, सुना ?

'अरे दुष्ट !'—कहकर मा उसे अपनी छाती के पास लाकर कहती है, अभी से इतनी अक्ल ! बोलो—करेगी नहीं न।

लड़का हँसते-हँसते गर्दन हिला मा का गला ज़ोर से पकड़कर कहता है, न, नहीं करेगी।

लड़के की तबियत थोड़ी-सी भी ख़राब होने पर मा को नींद नही आती। काम-काज बन्द कर वह दिन रात उसके सिरहाने के पास बैठी रहती है।

शहर में जितने भी डाक्टर हैं, हरिचरण सबको एक बार बुला लाता है। होमियोपैथी छोड़कर एलोपैथी होती है, और एलोपैथी छोड़कर कविराजी दवा की जाती है।

एक दिन की बीमारी डाक्टर, कविराजों की कृपा से दस दिन में अच्छी होती है।

लड़के की कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रहती।

निर्जन दोपहरी में बर्तन फेरी करनेवाला पुकार लगा जाता है।

लड़का कहता है—खाऊँगा।

सुरुचि कहती है, कहाँ का बेवकूफ लड़का है ! बर्तन बेच रहा है, बर्तन !

लड़का हठ करता है, बर्तन लूँगा।

लाचार हो सुरुचि बर्तनवाले को बुलाकर लड़के के लिए ख़रीदती है छोटी-छोटी रिकाबियाँ, पानी पीने के लिए एक छोटा-सा गिलास, भात खाने के लिए एक छोटी-सी थाली।

लोहे के रेलिंगदार बरामदे से होकर कोई भी फेरीवाला लड़के की नज़र से बच नहीं सकता। इसलिए दिन भर में कितनी बार कितनी तरह की चीज़ें सुरुचि को ख़रीदनी पड़ती हैं, उनका ठिकाना नहीं।

चीज़ों से घर एकदम भर गया है।

कितने प्रकार के कितने खिलौने आये हैं ! कितनी तरह की कितनी पुतलियाँ ! लड़के के लिए हरिचरण ने उस दिन एक चाभी लगी टीन की रेलगाड़ी ला दी हैं। और ला दी है एक चाभीवाली मोटरकार।

भर दोपहर कभी बरामदे के ऊपर, कभी कमरे के भीतर सर्-सर् खड़्-खड़् करती लड़के की रेलगाड़ी चलती हैं, मोटरकार चलती है।

बच्चे के हास्य-कलरव से मुखरित सुरुचि की गृहस्थली की श्री इस समय कुछ और हीं हो रही है।

सुन्दर की अवस्था अभी पाँच वर्ष से थोड़ी अधिक है, परन्तु उसकी फर्माइशों का कोई ठिकाना नहीं।

उसकी अद्‌भुत फर्माइश।

सरस्वती-विसर्जन का दिन। गाजे-बाजे के साथ रोशनी जला शोभायात्रा करती हुई प्रतिमा जा रही थी।

सुंदर ने ज़िद किया—उसको सरस्वती चाहिये।

मा ने कहा, दूँगी।

पिता ने कहा, कल तुम्हें उसी तरह की एक देवी-प्रतिमा ख़रीद दूँगा।

गर्दन हिलाकर लड़के ने कहा, नहीं, मुझे अभी चाहिये। और चाहिये ठीक वही देवता। दूसरे देवता से नहीं चलेगा !

आँख का तारा यह लड़का !

बेचारे हरिचरण को उसी समय देव-प्रतिमा की खोज में बाहर होना पड़ा।

परन्तु मूर्ति बनानेवालों के महल्ले के जिन लोगों ने सरस्वती बनाई थी, वे पूजा के बाद मूर्ति न दे सके।

वह अब क्या करेगा कुछ निश्चय न कर सकने के कारण हरिचरण घर लौट रहा था। सामने एक और प्रतिमा की शोभायात्रा हो रही है।

हरिचरण ने एक आदमी से पूछा, बता सकते हो उस तरह की प्रतिमा कहाँ मिलती है ?

आदमी ने थोड़ी देर अवाक् हो उसकी ओर देखा।

हरिचरण पागल नहीं है।

हँसकर बोला, लड़के ने जिद किया है। देवता चाहिये। और मूर्ति बनानेवालों के महल्लों में भी न मिला।

आदमी बोला, मेरे साथ आइये। नदी के पानी में विसर्जन होने के वक्त मैं आपको उसका शिर तोड़कर ला दूँगा।

पूजा की हुई प्रतिमा का शिर!

हरिचरण की छाती ने एक-ब-एक धक् से किया। जो हो। एकदम न मिलने से यह अच्छा ही है। मिट्टी की प्रतिमा, पूजा के बाद मन्त्र पढ़कर पुरोहित ने उसका विसर्जन किया है, अभी ही उसको ढेले की तरह उठाकर पानी में फेंक देगा। उसमें दोष क्या। निरुपाय हो हरिचरण उनके पीछे-पीछे चला।

दोनों हाथों में मुण्ड को लिये हरिचरण घर लौटा। लड़के की खुशी का ठिकाना न रहा। सुरुचि बोली—छिः छिः, यह आपने क्या किया! पूजा किये हुए देवता का मुण्ड लाया जाता है?

हरिचरण बोला—जाने दो। उसमें दोष नहीं। मैं बहुतों से पूछकर लाया हूँ।

दो दिनों के बाद, दोपहर के समय सुन्दर मिट्टी के उस मुण्ड के साथ खेल रहा है, सुरुचि पान लगा रही है, हरिचरण सो रहा है।

अकस्मात् चारोंओर अन्धकार हो गया, आकाश में मेघ घिर आये। मालूम हुआ वर्षा होगी। बरामदे में कपड़े सूख रहे हैं। सुरुचि का हाथ फँसा था, बोली—बबुआ जा कपड़ा उतार ला तो!

लड़के ने कहा—मुझसे न होगा।

सुरुचि बोली—भारी आलसी है, जो कहती हूँ उसी से न। कहती हूँ जाओ!

लड़का तब भी न गया।

हाथ के पास में ही बैठा हुआ था। क्रोधित हो उसकी पीठ के ऊपर एक थप्पड़ मारकर वह बोली—कहती हूँ जाओ, अभागा कहीं का, बात सुना करो!

मार खाकर सुन्दर कपड़ा उठाने गया।

परन्तु उसने कपड़ा न उठाया। शहर में एक 'सर्कस पार्टी' आई है। घोड़ा-गाड़ी के ऊपर बैण्ड बाजा बजाते हुए विज्ञापन का पर्चा बाँटते सर्कसवालों का एक दल उस समय उस रास्ते से गुजर रहा था। उसे देखने के लिए, वह रेलिंग के किनारे जा चुपचाप खड़ा हुआ। चारों ओर के आकाश को अन्धकारपूर्ण कर माथे

के ऊपर एक भीषणाकृति मेघ खड़ा हुआ है। प्रकाश बन्द हो गया है, हवा बन्द हो गई है—और उसी काली छायान्धकार के नीचे प्रकाशहीन, वायुहीन निस्तब्ध पृथिवी मानो विश्वास रोककर आसन्न प्रलय के भय से करबद्ध हो थर-थर काँप रही है।

बैन्डबाजा तब भी बन्द न हुआ। उन लोगों के ही घर के सामने के रास्ते से बाजा बजाती हुई गाड़ी उस समय धीरे-धीरे नज़दीक आ रही है।

बबुआ लड़का है, बिलकुल छोटा; इस पार से अच्छी तरह देखा नहीं जाता, इसलिए वह कपड़ा उठाने की बात भूलकर रेलिंग के लोहे पर पैर रख-रखकर ऊपर चढ़ा और नीचे की ओर झुका। और नीचे की ओर झुक हँसते हुए वह एकाग्र दृष्टि से उस ओर देखने लगा। देखने लगा, गाड़ी के पीछे-पीछे महल्ले के लड़के-लड़कियाँ दौड़े आ रहे हैं, गाड़ी के छत के ऊपर बाजा बज रहा है, भीतर से दो आदमी दोनों ओर के दरवाज़े से हाथ बढ़ा, लाल, नीले आदि नाना रंग के कागज़ ले-लेकर फेंक रहे हैं, और हल्ला करते हुए मन के आनन्द से मस्त लड़के उनको छीना-झपटी कर ले रहे हैं। फिर कोई-कोई धक्का खाकर एक दूसरे की देह पर गिर, धक्का-धुक्की कर हल्ला कर रहे हैं।

घर के भीतर से मा ने पुकारा—बबुआ!

'ऊँ।'

'आओ!'

नीचे के रास्ते में एक-ब-एक एक भीषण कोलाहल हुआ। बैंड का बाजा सहसा रुक गया।

लड़के का उत्तर उस हल्ले-गुल्ले में न सुन सुरुचि जल्दी-जल्दी बरामदे से बाहर आकर देखती है—सर्वनाश!

बबुआ नहीं।

रेलिंग के पास जाकर नीचे के रास्ते के ऊपर देखती है—आह! बबुआ नीचे गिर गया है।

सुरुचि का सारा शरीर बर्फ़ हो गया। हाथ-पैर थर्-थर् काँपने लगे।

अपने रोने के चीत्कार से स्वामी की निद्रा भंग कर वह काँपते-काँपते सीढ़ी पकड़कर दौड़ी हुई नीचे उतर रही थी परन्तु उसे आख़िरी सीढ़ी तक पहुँचना न पड़ा

नीचे उतरने के लिए अभी कई सीढ़ियाँ बाक़ी हैं, इसी समय देखा, उसकी अश्रु-भाराक्रान्त दृष्टि के सामने उसके उसी पाँच वर्ष आयुवाले खून से लथपथ बदन के बच्चे को कई आदमी लगकर उठाये उसी के पास लिये आ रहे हैं।

पागल की तरह 'डाक्टर' 'डाक्टर' पुकारते हुए हरिचरण नीचे उतर रहा था।

जनता के बीच से कोई एक आदमी बोल उठा—ख़तम हो गया है!

और अधिक कुछ बोलने की आवश्यकता न हुई। बात के सुनते ही संज्ञा-हीना सुरुचि सीढ़ी पर से लुढ़कते-लुढ़कते एकदम आँगन में आ गई। हरिचरण हा-हा कर रोते हुए उठ चीत्कार कर मन भरकर एकदम लोगों के बीच में आ गया और उन लोगों के हाथ से लड़के को छीनकर पागल की तरह आँगन में घूमने लगा। बार-बार सुन्दर लड़के के खून से लथपथ विकृत तथा वीभत्स मुख की ओर देख-देख वह असहाय भाव से हाय-हाय कर इस तरह रोने लगा कि उसे देखकर पत्थर भी पिघल जाय।

नीचे के भाड़े के मकानों की स्त्रियाँ सुरुचि को लेकर व्यस्त हो रही हैं।

उसकी मूर्छा किसी तरह नहीं टूटती। एक बार अगर उसे ऊँह-ऊँह करते हुए ज्ञान भी होता है, तो दूसरे क्षण वह बबुआ, बबुआ पुकारकर अज्ञान हो जाती है!

बीच जलाशय में नौका डूबने से जैसा होता है, इनकी अवस्था भी ठीक वैसी ही हुई है।

स्वामी-स्त्री अब उठकर बैठते हैं, और वे आहारादि कर चलते-फिरते भी हैं। साधारण मनुष्य की तरह वे अब अपनी बातें कहा करते हैं।

स्त्री ने एक दिन कहा कि वह सरस्वती का मुण्ड ही काल हुआ!

रोती-रोती बोली, कहा था न, पूजा की हुई प्रतिमा का शिर घर में लाने से अमंगल होता है—इसे फेंक दूँ!

यह कह सुरुचि उस दिन मिट्टी के उस शिर को फेंकने जा रही थी, हरिचरण ने मना किया। बोला, नहीं, रहने दो। वह अमंगल करे! वह अब और हमारा क्या करेगा, देखें! मुण्ड ताक के ऊपर जहाँ रखा था वहीं पर रहा।

जीवित रहने में अब उन्हें सुख नहीं है।

अब वे मरकर ही सुखी होंगे।

जब लड़का ही चला गया, तो अब इस पृथिवी पर उनका है ही क्या!

हरिचरण कहता है, दूर हो ! यही है जीवन ? आज हैं कल नहीं ! आओ हम दोनों भी मरें।

मृत्यु के नाम से सुरुचि उल्लसित हो उठती है।

कहती है, बताओ भी तो कि किस तरह मरूँ !

'आओ, हम दोनों एक साथ विष खायें, एक दूसरे के बगल में सो रहें।'

सुरुचि कहती है, यही अच्छा है। घर-द्वार जिसको इच्छा हो उसे दान कर दें। झूठ नहीं न,—बोलो तुम विष लाओगे ?

हरिचरण कहता है, हाँ, कोशिश करूँगा—छिपाकर लाना होगा। वह विष जिसमें खूब आसानी से मृत्यु हो। यदि कोई तेज़ विष न मिले तब...तब अफ़ीम।

हरिचरण छिपे-छिपे विष लाने की कोशिश करने लगा। परन्तु विष पाना एकदम सहज बात नहीं है।

इधर सुरुचि अपनी आँख की मणि—छाती का माणिक खोकर ठीक पगली-सी हो उठी है। जीने की उसे अब और साध नहीं है। जो पृथिवी लड़के के जीवित रहते आलोक, आनन्द, हँसी, गान और विपुल सौंदर्य से परिपूर्ण प्रतीत होती थी; आज वही उसके लिए केवल मिथ्या है, मरीचिका मात्र है। आशा का इङ्गित-मात्र चिह्न भी कहीं नहीं रहा। विधाता नहीं है। निविड़ तमसाच्छन्न दुःख-दुर्भोग के सिवा कहीं कुछ नहीं है। और उसी दुःख-दुर्भोग की चिरान्धकार रात्रि में जो अग्नि सहसा प्रज्वलित हो उठती है, निर्बोध नर-नारी उसे ही समझते हैं विधाता का आशीर्वाद ! असहाय मानव उसी से आनन्दित होता है, आशा के सहारे बेकार ही जीता है ! सीमाहीन, आशाहीन, मौन, मूक-स्तब्धता के बीच तापदग्ध मरूभूमि में पथ-भ्रान्त पथिक की आँख के सामने की माया-मरीचिका के जैसा वह मिथ्याग्नि की वह्नि-शिखा की तरह झप् से जल उठता है, और फिर उसी तरह चुपचाप बुझ भी जाता है। चिरनिष्ठुर, चिरनिर्वाक् जिस विधाता ने उसका इस तरह परिहास किया है, जो उसे दुःख देकर आनन्दित हुआ है, उसे वह उस आनन्द से वंचित करके ही छोड़ेगी—वह मरेगी।

सुरुचि बरामदे में जाकर खड़ी होती है। लोहे की रेलिंग पर भार देकर नीचे की ओर एकटक देखते-देखते एक-ब-एक उसे उसके अञ्चल की निधि चञ्चल बालक की बात याद आती है, और स्मरण आता है कि यहाँ से इसी तरह ही वह गिरकर मरा है! वह जाना न चाहता था, उसी ने उसे जबर्दस्ती कपड़ा उठाने के लिए भेजा था, उसने स्वयं उसकी हत्या की है। सोचते-सोचते वह ज्ञान-हीन हो जाती है, हृदय के भीतर न-जाने क्या-क्या भाव उठते हैं, रेलिंग पार हो वह भी वहीं पर गिरकर मरना चाहती है। परन्तु भय होता है—कोमल लड़का—सामान्य आघात भी उसके लिए असह्य होने के कारण वह मरा है। परन्तु वह खुद अगर न मरी! अगर पंगु होकर रह गई...

स्वामी से वह इसलिये बारबार पूछती—लाये हैं?

हरिचरण हठात् उसकी बात न समझ सकने से कारण भूला हुआ जैसा उसके मुख की ओर देखता है, उसके बाद लड़के का वह कोमल मुखड़ा याद आते ही वह स्वयं झर्-झर् आँसू बहाते हुए प्रतिज्ञा करता है--आज वह लायेगा ही। जैसे भी हो, जहाँ से भी हो—मृत्यु का अमृत वह संग्रह करेगा ही।

अकस्मात् महल्ले में चेचक दिखलाई पड़ी। शीतकाल था।

हरिचरण उस दिन शरीर में थोड़ा-थोड़ा बुखार लिये घर लौटा। सिर में दर्द है, हाथ-पाँव में दर्द और थोड़ी सर्दी। हो सकता हैं ठण्ढ लग गई हो।

आकर लेट गया। सुरुचि से कहा, सुनो!

'क्या!'

'थोड़ा तेल गरम कर लाओ तो।'

'क्यों? तेल क्या होगा?'

'काम है।'

सुरुचि तेल लाने गई।

लौटकर एक छोटे कटोरे की खोज में ताक पर नज़र पड़ते ही देखा कि सरस्वती का वह मुण्ड गायब है।

'वह कहाँ गया?' कह इधर-उधर देख उसने पूछा—

'क्या आपको मालूम है?'

हरिचरण ने कोई उत्तर न दिया।

बहुत देर के बाद पूछा, क्या ?

'यहाँ पर जो वह मुण्ड था ।'

'नहीं जानता ।' कह हरिचरण ने करवट बदली ।

सुरुचि ने पूछा, अच्छा, क्या करना होगा, कहिये तो ?

दोनों पैर बढ़ाकर हरिचरण बोला, पैरों के तलवों में खूब अच्छी तरह से मालिश कर दो । सर्दी-सी मालूम हो रही है, आज तबियत अच्छी नहीं है ।

पति के पैर में तेल मालिश करती बैठी हुई भी सुरुचि उस मुण्ड की बात को भुला न सकी ।

बोली, यह तो अच्छा भौतिक कांड देख रही हूँ । घर से चीज़ उड़ गई ?

'नहीं नहीं, वह उड़ी नहीं है ।'—एकदम उदासीन भाव से हरिचरण ने कहा, उसे मैंने फेंक दिया है ।

यह कह आँखें बंद कर हरिचरण मालूम होता है चेचक के भय से ही, दाहिने हाथ से अपने शरीर का उत्ताप अनुभव करने लगा ।

हो सकता है

प्रेमेन्द्र मित्र

[आधुनिक बंगाली लेखकों में कवि और गल्प-लेखक के विचार से प्रेमेन्द्र मित्र का एक सबसे निराला और अपना अलग स्थान है। वे जनता का मुँह देखकर नहीं लिखते। इसीलिए इनकी रचनाएँ अभी तक यथेष्ट मात्रा में लोक-प्रिय नहीं हो सकी हैं। किन्तु वास्तव में इनकी स्वतंत्रता और प्रतिभा का सिक्का लोगों को मानना ही पड़ता है। मैट्रिकुलेशन पास करने के बाद इन्होंने कुछ दिनों तक आई० एस० सी० में पढ़ा था। पढ़ाई छोड़ने के बाद ये मेडिकल स्कूल में भरती हुए थे। परन्तु चिकित्सा-शास्त्र की शिक्षा भी इनकी प्रकृति के अनुकूल नहीं हुई। तब से ये जी लगाकर साहित्य-सेवा ही करने लगे और 'कल्लोल' में ही सबसे पहले इनकी कहानियाँ और कविताएँ निकलने लगी थीं और तभी से साहित्यिक समाज की श्रद्धापूर्ण दृष्टि इनकी ओर आकृष्ट होने लगी थी। आज-कल ये देवदत्त फिल्म्स के प्रचार-विभाग में काम करते हैं। इससे पहले ये नवशक्ति नामक साप्ताहिक पत्र का सम्पादन करते थ।

प्रेमेन्द्र मित्र की रचनाएँ कुछ अधिक मात्रा में पांडित्य और प्रज्ञा से युक्त होती हैं। भाव-प्रवणता बँगला-साहित्य का प्रधान अवलंबन है। बंगालियों की रुचि में कारुण्य, माधुर्य और सौकुमार्य सबसे अधिक होता है। शरत्चन्द्र और शैलजानन्द की रचनाओं में इन सब बातों का बहुत ही सुन्दर समावेश हुआ है; और इसीलिए इन लोगों की रचनाओं के लोक-प्रिय होने में अधिक देर नहीं लगी थी। प्रेमेन्द्र मित्र की रचनाओं की अन्तर्मुखीनता और विश्लेषण-परता, आख्यान के अंश की न्यूनता और व्यंजना की अधिकता, घटनाओं की संक्षिप्तता और पट-भूमि की प्रसारता ने बँगला-गल्प-साहित्य की एक बिलकुल नये मार्ग में अवतारणा की है। विशुद्ध रस-सृष्टि के विचार से रवीन्द्रनाथ की बराबरी का और कोई गल्प-लेखक इस देश में नहीं हुआ। शरत्चन्द्र दर्द-भरी बातें लिखने में बेजोड़ हैं। विचित्रता में शैलजानन्द असामान्य हैं। किन्तु ये तीनों ही थोड़ी बहुत मात्रा में भावाश्रयी हैं। लेकिन प्रेमेन्द्र मित्र ने बोध-वृत्ति के इंगित का ही प्रधानतः अवलम्बन किया है। इनकी कहानियाँ इसीलिए अनेक अवसरों पर आख्यान के विचार से असम्पूर्ण-सी मालूम

हो सकती हैं। तो भी इनकी विशेषता सहज में सामने आ जाती है। इसके सिवा आधुनिक लेखकों में से इनकी भाषा पर रवीन्द्र का प्रभाव सबसे कम है। 'हयात' नामक कहानी में लेखक ने एक अद्‌भुत कल्पना बहुत ही निपुणता-पूर्वक प्रकट की है। गल्प के विचार से इसका आकर्षण प्रधानतः इसकी शैली और रंग-ढंग में है; और इस विचार से इसका विषय आनुषंगिक-मात्र है।]

हो सकता है

वह गम्भीर दुर्योग की रात थी।

अन्धकार-पूर्ण आकाश में मेघों में जो परस्पर भीषण संघर्ष हो रहा था, वह आँखों से तो किसी तरह देखा ही नहीं जा सकता था; लेकिन इस पृथ्वी पर उसकी जो प्रतिक्रिया होती थी, उसे देखकर उस संघर्ष की भीषणता का अनुमान करने में कोई विशेष कष्ट नहीं होता था।

भयभीत नगर मानो उस अन्धकारपूर्ण और आँधी-पानी की रात में अपने-आपको किसी निरापद आश्रय में सिकोड़कर छिपा रखना चाहता था।

निर्जन मार्गों पर जहाँ-जहाँ गैस की रोशनी पड़ रही थी, वहाँ-वहाँ जमीन की मिट्टी नहीं दिखाई देती थी—केवल वर्षा की धारा का बहता हुआ चमचमाता जल-ही-जल दिखाई देता था। सड़कों के किनारे जो वृक्ष लगे हुए थे, वे हवा के झोंकों में पड़कर असहाय क़ैदियों की तरह मिट्टी की शृंखला तोड़ फेंकने के लिए मानो उन्मत्त हो रहे थे।

ऐसी रात के समय आकाश के उत्पीड़न से विपर्यस्त पृथ्वी को देखकर हठात् ऐसा जान पड़ता था कि वह नितान्त असहाय हो रही है। अकस्मात् मानो इस ग्रह के थोड़े-से दुर्बल प्राणियों के भविष्य के सम्बन्ध में मन बहुत अधिक हताश हो जाता था।

सड़कों के किनारे के गैसों का प्रकाश बिलकुल निष्प्रभ हो रहा था। और न जाने क्यों समस्त मानव-जाति की आशा के साथ उसकी उपमा बार-बार मन में आना चाहती थी।

बस से उतरकर कीचड़ से भरे हुए निर्जन रास्ते से होकर वर्षा के झोंकों से अपने शरीर को बचाने की निष्फल चेष्टा करता हुआ और अपने मन में इसी तरह की सब चिन्ताएँ लेकर घर लौट रहा था। लेकिन मानव-जाति के भविष्य के

सम्बन्ध में मन में जो अस्पष्ट निराशा थी, उसके सिवा एक और भय भी मन में छिपा हुआ था। वह भय तथा आशंका व्यक्तिगत थी और उसका हेतु भी अत्यन्त स्पष्ट था।

रास्ता बहुत चलना था। और बीच में एक ऐसा नया पुल पार करना था, जो अभी तक पूरा बना ही नहीं था। वह पुल अभी तक लोगों के आने-जाने के योग्य नहीं हुआ था। वहाँ चलने का रास्ता भी बहुत सँकरा था। उस जगह अभी तक अगल-बगल रेलिंग भी नहीं दी गई थी। वहाँ साधारण अवस्था में में ही एक एक तख़्ते के ऊपर बहुत ही सावधानी से पैर रखते हुए चलना होता था। इस दुर्योग की रात में वह पुल पार करने में विशेष विपत्ति की सम्भावना थी। उसी विपत्ति का सामना करने के लिए मैं मन-ही-मन साहस संचित करने की चेष्टा कर रहा था।

लेकिन पुल के पास पहुँचने पर बहुत कुछ आश्वासन हुआ। दिन भर में पुल के निर्माण का कार्य बहुत कुछ अग्रसर हो गया था। अभी तक दोनों तरफ रेलिंग तो नहीं लगी थी, लेकिन अब तख़्तों की दराज़ में से नीचे गिरने का भय नहीं रह गया था। इस बीच में वे सब तख़्ते मजबूती के साथ जोड़ दिये गये थे।

वह पुल सिक्कड़ों से झूल रहा था और हवा के झोंकों के कारण ज़ोरों से हिल रहा था। यह बात नहीं थी कि उसे देखकर अब बिलकुल ही भय नहीं होता था, लेकिन फिर भी जी कड़ा करके मैंने उस पर पैर रख ही दिया। यदि मैं यह पुल न पार करता तो इस आँधी-पानी में मुझे अभी और एक मील का चक्कर लगाकर तब कहीं घर पहुँचना पड़ता।

पुल पर पैर रखते ही मैंने समझ लिया कि आँधी के साथ लड़ते हुए इस झूलते हुए पुल को पार करना कुछ सहज काम नहीं है। इसके लिए केवल साहस की ही नहीं, बल्कि शक्ति की भी आवश्यकता थी। खुली हुई नदी के ऊपर आँधी का वेग इतना अधिक प्रचण्ड हो गया था कि प्रत्येक क्षण एक दम से नदी में गिर ही पड़ने की सम्भावना थी।

कहीं कोई आदमी नहीं दिखलाई देता था। मैं सोचने लगा कि यदि इस जन-हीन पुल पर अपने अहंकार का विसर्जन करके मैं घुटनों के बल ही चलूँ.

तो इसमें हर्ज क्या है। यही सोचता हुआ मैं कुछ दूर आगे बढ़ा था कि उसी समय...

मैं वहीं रुककर खड़ा हो गया। पुल के इस पार मिट्टी के तेल की एक टिम-टिमाती हुई रोशनी प्राण-पण से चेष्टा करके उस पार के अन्धकार को केवल कुछ तरल ही कर सकी थी।

उसी तरह अन्धकार में दो अस्पष्ट मूर्त्तियाँ दिखाई दीं। वे दोनों मूर्त्तियाँ उस पार से यह पुल पार करने की चेष्टा कर रही थीं। उनमें से एक मूर्त्ति स्त्री की थी।

उस दिन मैं यह सोचकर वहाँ रुककर खड़ा नहीं हुआ था कि इस अन्धेरी और आँधी-पानी की रात में ये दोनों स्त्री और पुरुष कौन-से ज़रूरी काम के लिए यह विपत्ति-युक्त पुल पार करने के लिए आ रहे हैं।

इस आँधी पानी की रात में यह बात चाहे कितनी ही कुतूहल-जनक क्यों न हो, लेकिन फिर भी विस्मय-जनक नहीं थी।

लेकिन उस पार के तरल अन्धकार में उन दोनों अस्पष्ट नर-नारी की मूर्त्तियों का जो आचरण दिखाई दिया, वह सचमुच आसाधारण था।

वह स्त्री नहीं आना चाहती थी। यह तो मैं नहीं जानता कि वह केवल पुल पार करने के भय से नहीं आना चाहती थी, या और किसी भारी आशंका के कारण नहीं आना चाहती थी; लेकिन फिर भी इतना पता अवश्य चलता था कि पुरुष उसे खींचने की जो चेष्टा करता था उसका वह प्राण-पण से प्रतिरोध करना चाहती थी। लेकिन उस तेज़ हवा के शब्द में से उन दोनों की जो थोड़ी-सी बातें मैं सुन सका था, उनसे मुझे ऐसा ही जान पड़ा कि वह पुरुष उसे हर तरह से आश्वासन देना चाहता था।

उस समय तक मैं आँधी के साथ जूझता हुआ पुल के बीचों-बीच तक आ पहुँचा था।

मैंने देखा कि अन्त तक वह स्त्री आना नहीं चाहती थी और अत्यन्त अनिच्छापूर्वक वह आने लगी थी। अब पुरुष उसका हाथ पकड़कर उधर से पुल पर आगे बढ़ने लगा।

कुछ दूर और आगे बढ़ने पर उन दोनों से मेरा सामना हो गया। पुरुष और स्त्री दोनों ही अपना सारा शरीर कपड़ों से खूब अच्छी तरह लपेटे हुए थे। लेकिन

उन कपड़ों के जंगल के अन्दर ही मिट्टी के तेल की बत्ती के अस्पष्ट प्रकाश में उस स्त्री का चमकता हुआ चेहरा देखकर मैं फिर एक बार चौंक पड़ा।

उसके शीर्ण और रोगी मुख में दो बड़ी-बड़ी आँखें थीं। उन आँखों में असहाय आतंक का जो चित्र मैंने देखा, उसके सम्बन्ध में मैं कभी यह समझ नहीं सकता था कि ऐसा चित्र मनुष्य की आँखों में भी दिखाई दे सकता है।

मेरा कुतूहल बराबर बढ़ता ही जाता था। लेकिन उपाय ही क्या था।

अब मैं पुल के प्रायः उस पार पहुँच चुका था। लेकिन उसी समय पीछे से अमानुषिक चीत्कार सुनकर मैं चौंककर और पीछे की तरफ मुड़कर खड़ा हो गया।

सर्वनाश !

मेरे देखते-देखते वह स्त्री हवा का झोंका न सँभाल सकने के कारण ज़ोर से चिल्लाती हुई नीचे गिर पड़ी। जहाँ तक हो सका, जल्दी-जल्दी चलकर मैं उस स्थान पर पहुँचा। ऐसा जान पड़ता था कि मारे आतंक के वह पुरुष हत-बुद्धि हो गया था। वह जिस ढंग से बिलकुल काठ होकर वहाँ खड़ा था, उसे देखते हुए मुझे ऐसा जान पड़ता था कि उससे किसी प्रकार की सहायता पाने की आशा नहीं है।

लेकिन अँधेरे में और ऐसी आँधी तथा पानी के समय उस गहरी नदी में से उस स्त्री का उद्धार करने के लिए मैं भी भला क्या कर सकता था !

कौन कह सकता था कि इतनी देर में वह नदी के बहाव में पड़कर कहाँ चली गई होगी। अगर मैं तैरना भी जानता होता, तो भी उस रात के समय नदी में से उसका उद्धार करना मेरे लिए एक प्रकार से असम्भव ही होता। लेकिन मैं तो तैरना भी नहीं जानता था।

हठात् बहुत नीचे से अस्पष्ट कातर पुकार सुनकर मैं चौंक पड़ा। और इसके बाद तुरन्त ही उसकी साड़ी का एक हिस्सा मुझे दिखाई दिया।

नीचे गिरने के समय उसकी साड़ी का एक अंश न जाने किस तरह लोहे के एक बोल्ट में फँस गया था, जिससे वह स्त्री नीचे जल में नहीं गिरी थी। वह उसी कपड़े में फँसी रहकर नीचे की ओर मुँह किये हुए अँधेरी नदी के ऊपर झूल रही थी।

मैंने धक्का देकर उस अपरिचित व्यक्ति का वह भाव दूर करने की चेष्टा करते हुए कहा—जल्दी आकर पकड़िये। अभी तक हम लोग शायद उसे खींचकर ऊपर ला सकते हैं।

उस व्यक्ति ने यन्त्र-चालित की तरह आकर मेरे आदेश का पालन किया।

* * *

उस दिन वह स्त्री अवश्य ही मृत्यु से बाल-बाल बची थी। उस समय उन लोगों के लिए कृतज्ञता दिखलाने का भी समय नहीं था, और मेरे लिए उनका परिचय प्राप्त करने का भी समय नहीं था। और नहीं तो हो सकता है कि बहुत-सी बातें जानने और सुनने में आतीं।

मैंने बहुत सावधानता-पूर्वक पहले तो उन दोनों को किसी तरह पुल के उस पार पहुँचाया और उसी बीच में उन लोगों की कुछ बातें भी सुनी थीं। उन्हीं बातों के कारण मेरे मन में बहुत कुछ सन्देह और विस्मय उत्पन्न हो गया था, जो अब तक बराबर बना हुआ है।

उस पुरुष के साथ चलते समय स्त्री ने कहा था—देखो, कैसे आश्चर्य की बात है कि गिरने के समय मुझे ऐसा जान पड़ा था कि मानो तुम्हीं ने मुझे धक्का दे दिया हो। मेरा पैर तो फिसला नहीं था। मुझे ठीक यही जान पड़ा था कि मानो तुम्हीं ने मुझे ढकेल दिया...

उन लोगों की बातें धीरे-धीरे अस्पष्ट होती जा रही थीं। मैंने उस आदमी को हँसते हुए भी सुना था। वह मानो कह रहा था—पागल कहीं की! कैसी बातें करती हो। भला मैं तुम्हें ढकेलूंगा!

मैं वह घटना कभी भूल न सका। समय-असमय उस विपद्-संकुल पुल पर अस्पष्ट भाव से देखी हुई उन दोनों मूर्त्तियों के सम्बन्ध में अनेक प्रकार के सन्देह और अनेक प्रकार के प्रश्न मेरे मन में उत्पन्न होते हैं। मैं यह नहीं जानता कि वे लोग उस आँधी-पानीवाली रात को क्यों और कहाँ से वह पुल पार करने के लिए आ रहे थे, वह स्त्री किस तरह गिर पड़ी थी, बच जाने पर ऐसी बात उसने क्यों कही थी और उसके बाद वे दोनो कहाँ चले गये? फिर भी उन लोगों के सम्बन्ध में अस्पष्ट भाव से अनेक प्रकार की बातें मेरे मन में बराबर उठा करती थीं।

उस असाधारण घटना और अस्पष्ट भाव से देखी हुई उन दोनों मूर्तियों को केन्द्र बनाकर आप-से-आप मन में एक कहानी उठ खड़ी होती थी।

❀ ❀ ❀

बहुत बड़ा सात-मंज़िला मकान था।

लेकिन अब तो उसका कुछ भी अवशिष्ट नहीं रह गया। चारों ओर ईंटों और लकड़ियों के ऐसे टूटे-फूटे स्तूप हैं, जिनमें नोना लगा हुआ है। बाहर से देखने से बिलकुल भूतों के रहने की जगह मालूम होती है। सहज में यह विश्वास करने को जी नहीं चाहता कि इस खँडहर के किसी छिपे हुए कोने में अभी तक उसके मुमूर्षु प्राण धुक्-धुक् कर रहे हैं। दिन के समय तो उन प्राणों के कहीं कोई लक्षण ही नहीं दिखाई देते थे।

सदर दरवाज़े को भेदकर पीपल/का जो बहुत बड़ा पेड़ चारों ओर अपनी शाखायें और प्रशाखायें बढ़ाकर फैला हुआ था, उसके पत्तों की छाया में बैठकर उल्लू बोला करते थे। किसी ज़माने में उस मकान का जो बाहरी हिस्सा था, उसके ध्वंसावशेष में गिलहरियों के दल निर्भय होकर घूमा करते थे और गिलहरियाँ एक दूसरी को भगाया करती थीं।

किसी को सहज में इस बात का पता भी नहीं चल सकता था कि इस ध्वंसावशेष की आड़ में कहीं मनुष्य के जीवन की धारा बह रही है।

लेकिन रात के समय बहुत दूर से दिखाई देता था कि इस ध्वंस स्तूप के मध्य में कहीं से क्षीण प्रकाश की रेखा आ रही है। जो विदेशी इस मकान का कुछ भी इतिहास नहीं जानते थे, वे भी जब इस रास्ते से होकर गुज़रते थे, तो इसे देखकर उन्हें डर लगता था।

* * *

गठ-बन्धन की अवस्था में ही एक दिन इस ध्वंसावशेष के पास लावण्य अपनी पालकी पर से उतरी थी। उसके यहाँ से जो मजदूरनी उसके साथ आई थी, उसने यहाँ की ज़मीन पर पैर रखते ही भनककर कहा था—कैसे मूरख कहार हैं! इस भूतखाने के सामने लाकर पालकी रख दी। इससे वर-कन्या का अमंगल नहीं होगा?

वर-पक्ष की ओर से जो पुरोहित विवाह कराने के लिए गया था, उसके साथ रास्ते में उस मज़दूरनी का कई बार वाक्-युद्ध हो गया था। यद्यपि पुरोहित ने अपनी ओर से लड़ने के लिए विशेष उत्सुकता नहीं दिखलाई थी, तो भी मज़दूरनी ने उनके मान की मरम्मत करने में कोई बात उठा नहीं रखी थी। पुरोहित ने दाँत निकालकर सिर्फ़ इतना ही कहा था—मर कम्बख़्त कहीं की! यह मकान भुतहा क्यों होने लगा? यह नियोगी-परिवार का सात पीढ़ियों का रहने का मकान है। इस दयार में ऐसा कोई आदमी नहीं है, जो उन लोगों को न जानता हो। इसके लेखे यह भुतहा मकान हो गया!

मज़दूरनी ने अपनी आँखें ऊपर माथे तक चढ़ाकर चकित होकर कहा था—अरे ये लोग कैसी बातें करते हैं। इस खँड़हर में आदमी रहते हैं?

इसके बाद उसने कदाचित् कन्या के पिता के उद्देश्य से अपना कठोर मन्तव्य प्रकट करते हुए कहा था—भले आदमी ने पैसा ख़र्च करने के डर से यह क्या किया! लड़की को इस जंगल में इसलिए भेज दिया कि इसे साँप काट खाय और यह मर जय!

घूँघट काढ़े हुए लावण्य उस समय गठ-बन्धन की अवस्था में अपने स्वामी के साथ पालकी पर से उतरी थी।

जान पड़ता है मज़दूरनी के साथ बातें करना बिलकुल व्यर्थ समझकर ही पुरोहितजी रास्ता दिखलाते हुए आगे बढ़ने लगे थे।

रास्ता दिखलाना सिर्फ़ कहने के लिए नहीं था, बल्कि उसकी नितान्त आवश्यकता थी। टूटी-फूटी ईंटों आदि के ढेरों पर से होती हुई घुटने भर ऊँची घासों और झाड़ियों के जंगल में से, जिसके नीचे सुरंग की तरह अँधेरा था और बहुत दिनों की सड़ी हुई बदबू भरी हुई थी, क़दम-क़दम पर धक्के खाती हुई लावण्य अपने स्वामी के पीछे-पीछे चल रही थी। उनके पीछे-पीछे मज़दूरनी को भी लाचार होकर चलना पड़ता था। वह मन-ही-मन बड़बड़ाती जाती थी—मैंने तो सात जन्म में भी ऐसा ब्याह नहीं सुना था। आये तो ब्याह करने, पर न साथ में बारात है और न लड़के की तरफ का कोई बड़ा-बूढ़ा या घर का मालिक ही है। टिक-टिक करता हुआ एक मुरदा-सा पुरोहित अपने साथ वर को लेकर आ पहुँचा। और उन लोगों ने भी बिना कुछ जाने-बूझे और बिना पूछे-ताछे लड़की को हाथ-पैर

बाँधकर उनके साथ कर दिया। और ये लोग भी न जाने कहाँ के उबारू हैं! जात नहीं, गोत्र नहीं, अड़ोसी-पड़ोसी नहीं, ब्याहकर आये और वर-कन्या को वेदी पर से कोई उठाने भी नहीं आया। इससे अच्छी रस्में तो गीदड़ों और कुत्तों के ब्याह में होती हैं।

जान पड़ता है कि लावण्य के कानों तक ये सब बातें नहीं पहुँची थीं। वह बिलकुल डरी और सहमी हुई असहायों की तरह चुपचाप चली जा-रही थी और मन-ही-मन सिर्फ यह सोचती जाती थी कि अगर सिर्फ एक बार कोई हाथ बढ़ाकर मुझे पकड़ ले, तो किसी तरह मेरी जान बच जाय।

लेकिन किसी ने हाथ नहीं बढ़ाया।

यों तो मजदूरनी बड़बड़ा ही रही थी, पर बीच में एक बार वह झनककर बोल उठी—मैं तो कहती हूँ, कि यह मुँह-जला बाम्हन आखिर किस भाड़ में लिये चला जा रहा है।

इस पर ब्राह्मण ने उत्तर दिया—तुम्हें कब्र में गाड़ने।

इसके उत्तर में मज़दूरनी ने जो-जो बातें कहनीं शुरू कीं, उनसे चाहे और जो हो, लेकिन लावण्य का पहले-पहल अपने स्वामी के गृह में प्रवेश करने का शुभ मुहूर्त्त मधुर नहीं हुआ।

यह नहीं कहा जा सकता कि मज़दूरनी की यह बक-बक कब तक चलती। लेकिन सहसा उस अँधेरे मार्ग में किसी का मधुर कल-हास्य गूँज उठा।

मजदूरनी चौंककर चुप हो गई। लावण्य ने अपने चेहरे पर का घूँघट ज़रा-सा हटाकर इस बात का पता लगाने की चेष्टा की कि आख़िर यह सुमधुर हास्य कहाँ से आ रहा है।

जो हँसा था, उसी का अपरूप स्वर सुनाई दिया—अरे, भइया तो चुपचाप बहू ले आये।

इसके बाद शंख-ध्वनि हुई।

अँधेरा रास्ता उस समय तक समाप्त हो गया था। सामने ही एक छोटा-सा आँगन था और उस आँगन के चारों तरफ कई कोठरियाँ थीं।

ज्योंही लावण्य आकर रोशनी के सामने खड़ी हुई, त्योंही शंख बजाना बन्द करके जिस युवती ने आकर लावण्य के मुँह पर से घूँघट हटाया था और एक बार

मधुर हास्य से सारा घर गुँजा दिया था, यद्यपि उसकी ओर लावण्य ने बहुत ही थोड़े समय के लिए केवल एक बार देखा था और तब अपनी आँखें नीची कर ली थीं, तो भी लावण्य के आश्चर्य की सीमा नहीं रह गई थी।

लावण्य को आज तक कभी यह जानने का सुयोग नहीं प्राप्त हुआ था कि नारी के शरीर में इतना अधिक रूप भी हो सकता है।

उस लड़की ने हँसते हुये कहा—अरे वाह! यह कैसी बहू है जो प्रणाम भी नहीं करती। क्या तुम प्रणाम नहीं जानतीं?

लावण्य की समझ में ही नहीं आया कि किसे प्रणाम करना चाहिये; इसलिए वह सिर झुकाकर उस लड़की को ही प्रणाम करना चाहती थी। इस पर वह लड़की खिलखिलाकर हँस पड़ी और कुछ पीछे हटकर बोली—अरे हमें नहीं, हमें नहीं। बुआजी को नहीं देख रही हो?

लावण्य ने बुआ की ओर देखा। ऐसा जान पड़ता था कि उसे देखते ही वह एक बार अन्दर-ही-अन्दर सिहर उठी थी।

बिलकुल सूखे हुए शीर्ण और वीभत्स चेहरे की कानी की एक आँख भयंकर दृष्टि से मानो बुढ़ापे की मूर्त्ति बनकर उसे बींध रही थी।

❀ ❀ ❀

लावण्य की गृहस्थी शुरू हुई।

मज़दूरनी दो दिन तक वहाँ रहने के बाद उस भुतहे मकान के सम्बन्ध में तरह-तरह की असम्बद्ध बातें कहकर चली गई थी। इस लम्बे-चौड़े और टूटे-फूटे प्रासाद के अन्दर अपेक्षाकृत कम निरापद तीन कमरों में केवल यही चार आदमी रहते थे। ऊपर नीचे चारों तरफ सिर्फ झाड़-झंखाड़ और जंगल के सिवा कुछ भी नहीं था; और या थे काम में न आने लायक टूटे-फूटे और परित्यक्त कमरे। उनमें से किसी की कड़ियाँ और धरनें झूल रही थीं, तो किसी की छत गिरना चाहती थी। किसी की दीवार ही ढह गई थी। उन सब कमरों में मकड़ियों और चूहों ने दख़ल कर रखा था।

इस टूटे-फूटे और भुतहे मकान के कमरों की तरह इसमें रहनेवाले लोग भी रहस्यमय ही थे। जिसे बुआ मानकर लावण्य को पहले दिन प्रणाम करना पड़ा

था, वह जल्दी कहीं दिखाई ही नहीं देती थी। एक कोने के अँधेरे कमरे में पड़ी-पड़ी दिन भर वह क्या खुट-खुट किया करती थी, इसके जानने का कोई उपाय ही नहीं था। लावण्य को यह समझने में अधिक देर नहीं लगी कि वह अपने कमरे में किसी को आने नहीं देना चाहती। अगर कभी संयोग से लावण्य का और उसका सामना हो जाता था और दोनो की आँखें चार होती थीं, तब वह इस ढंग से लावण्य की ओर देखती थी, कि अकारण ही लावण्य का कलेजा तक बरफ हो जाता था।

अपने स्वामी को भी वह नहीं समझ सकती थी। वह दिन भर अपने काम-धन्धे में ही भूले रहते थे। रात के समय सोनेवाले कमरे में घुसते हुए न जाने क्यों उन्हें भय-सा होता था।

सोने का कमरा बहुत बड़ा था। उसकी कड़ियाँ और धरनें जगह-जगह से बहुत कमज़ोर हो गई थीं; और जिस जगह चाँड़ लगाकर उन्हें कुछ मजबूत बनाने की कोशिश की गई थी, उस जगह का दृश्य और भी अद्भुत हो गया था। कमरे के दो तरफ दो खिड़कियाँ थीं। उनमें से एक खिड़की खोलने पर सामने बाँसों का एक बहुत बड़ा जंगल और एक तालाब दिखाई देता था। और दूसरी खिड़की तो हमेशा बन्द ही रहती थी। एक दिन वह खिड़की खोलने के लिए लावण्य आगे बढ़ी थी, लेकिन फिर भी मारे भय के उसने उसे खोलने की चेष्टा नहीं की। उस खिड़की के उस पार जो कमरा था, वह काम में आने के लायक नहीं था और बहुत ही अँधेरा था; और साथ ही टूटा-फूटा भी था। उसमें बहुत-सा काठ-कबाड़ भरा हुआ था। वह खिड़की खोलते ही उस कमरे के अन्दर से कुछ बेढब खट-खट का ऐसा शब्द सुनाई दिया कि लावण्य ने तुरन्त ही डरकर वह खिड़की बन्द कर दी। चाहे वह शब्द चमगादड़ों का ही रहा हो, लेकिन फिर भी लावण्य का भय दूर नहीं हुआ।

कभी-कभी ऐसा होता था कि जब लावण्य कमरे के अन्दर पहुँचती थी, तब देखती थी कि स्वामी पहले से ही बिछौने पर बैठे हुए हैं। लेकिन वे आँख उठाकर उसकी तरफ देखते भी नहीं थे। संकुचित भाव से वह थोड़ी देर तक खड़ी रहती थी और तब धीरे-धीरे शायद आगे बढ़कर बिछौने के एक कोने पर बैठ भी जाती थी। लेकिन फिर भी स्वामी उसकी तरफ नहीं देखते थे। वे सदा अपनी चिन्ता में ही मग्न रहते थे।

इसके बाद अचानक स्वामी किसी समय उसे कसकर पकड़ लेते थे और प्रेम-पूर्वक चुम्बन करके उसे एकदम से अभिभूत कर देते थे। लेकिन फिर भी स्वामी के कठोर बाहु-बन्धन में जब लावण्य निश्चिन्त होकर सुख-पूर्वक आत्म-समर्पण करना चाहती थी, तो उसे इसमें सफलता नहीं होती थी। उसके मन में न जाने कहाँ एक बाधा बनी ही रहती थी।

स्नेह-पूर्वक उसे अपने पास बैठाकर और अपना बायाँ हाथ उसके गले में डालकर स्वामी उससे पूछते थे—क्यों लावण्य, तुम्हें यहाँ कोई कष्ट तो नहीं होता ?

लावण्य सिर हिलाकर जतलाती थी कि नहीं, मुझे कष्ट नहीं हो रहा है।

'मैं तुम्हें पसन्द हूँ न ?'

यह अत्यन्त साधारण स्वामी और स्त्री का प्रश्नोत्तर था। लज्जित भाव से लावण्य 'हूँ' कर देती थी और स्वामी की गोद में अपना मुँह छिपा लेती थी।

लेकिन यह साधारण बात-चीत भी अचानक असाधारण रूप धारण कर लेती थी। स्वामी ज़ोर से उसका मुँह पकड़कर ऊपर उठाते थे और अचानक उग्र स्वर से पूछने लगते थे—बस बिलकुल सहज भाव से 'हूँ' कह दिया! क्यों ? अरे तुम लोगों की पसन्द होना क्या कोई मामूली बात है!

लावण्य की समझ में कुछ भी न आता था, और वह आश्चर्य-पूर्वक देखती रह जाती थी। स्वामी का स्वर और भी चढ़ जाता था।

वे उत्तेजित होकर कहने लगते थे—एक बार कसकर पकड़ लिया और अपने पास खींच लिया और कह दिया कि पसन्द हो। यही तो पसन्द का दाम है न ? क्यों ?

लावण्य चुप रह जाती थी।

स्वामी बिछौने पर से उठकर खड़े हो जाते थे और पागलों की तरह पूछने लगते थे—बतलाओ, बतलाओ, चुप क्यों हो, क्या उत्तर नहीं दे सकतीं ?

डरकर लावण्य कहती—क्या कहूँ ?

'क्या कहूँ ? जानती नहीं कि क्या कहना चाहिये ? यह नहीं बतला सकती हो कि पुरुष को इतने सहज में कैसे पसन्द कर लेती हो ?'

लावण्य की समझ में ही नहीं आता था, कि मैं इस बात का क्या उत्तर दूँ, और इसीलिए वह बिलकुल चुप रह जाती थी। स्वामी अशान्त भाव से कमरे में टहलने लगते थे। लेकिन स्वामी की उत्तेजना जितने वेग से आती थी, उतनी ही जल्दी वह शान्त भी हो जाती।

इसके बाद वे फिर शान्त भाव से आकर उसके पास बैठ जाते थे, और कहते थे—क्यों लावण्य, तुम नाराज़ हो गई?

लावण्य दबे हुए स्वर से कहती थी—नहीं, तुम इस तरह क्यों कर रहे थे?

'नहीं, कुछ भी नहीं। सिर्फ तुमसे मज़ाक कर रहा था। बतलाओ, तुम सचमुच इसी तरह जन्म भर मुझसे प्रेम करोगी न?'

अब लावण्य के मुख पर हँसी दिखाई देती थी। वह फिर स्वामी की गोद में सिर रख देती थी और धीरे-धीरे अर्द्ध-स्फुट स्वर में कहती थी—मालूम होता है कि शायद तुम जनम भर इस तरह मुझसे प्रेम नहीं करोगे। क्यों?

❀ ❀ ❀

किन्तु स्वामी के परिहास की समाप्ति यहीं नहीं हो जाती थी। कभी-कभी ऐसा होता था कि आधी रात के समय जब लावण्य की नींद अचानक खुल जाती थी तब वह देखती थी कि कमरे की दीवार में टँगी हुई लालटेन खूब अच्छी तरह जल रही है और बिछौने पर बैठे हुए स्वामी उसके मुख की ओर टक लगाकर देख रहे हैं।

लेकिन उस दृष्टि में अनुराग की कोमलता नहीं होती थी। वह दृष्टि तीव्र और तीक्ष्ण होती थी।

लावण्य ज्योंही आँखें खोलकर देखती थी, त्योंही स्वामी मानो अप्रस्तुत होकर आँखें फेर लेते थे और कुछ पीछे खिसककर बैठ जाते थे।

लावण्य पूछती थी—तुम इस तरह उठकर बैठे हुए क्यों थे?

'नहीं, कुछ भी नहीं। तुम नींद में न जाने क्या बड़बड़ा रही थीं और मैं वही सुन रहा था।'

'मैं क्या कहती थी?'

'नहीं-नहीं, कहती कुछ नहीं थीं। मैं देखता था कि अगर तुम बोलो तो मैं सुनूं।'

इतना कहकर स्वामी वह बात उड़ा देते थे और वहाँ से उठ जाते थे।

❀ ❀ ❀

एक दिन प्रभात के समय जब अचानक लावण्य की नींद खुली, तब वह अवाक् रह गई। कमरे में उस समय तक अँधेरा था। मालूम होता था कि दीवार में टँगी हुई लालटेन तेल के अभाव के कारण बुझ चुकी थी। लेकिन सवेरा होने में भी अब ज़्यादा देर नहीं थी। पूरब तरफ की खिड़की में से दिखाई देता था कि बँसवाड़ी की तरफ आकाश का रंग कुछ-कुछ लाल हो रहा है। जब लावण्य बिछौने पर से उठने लगी, तब अचानक उसे कुछ बाधा-सी जान पड़ी। उसने देखा कि स्वामी ने अपनी धोती के कोने से उसका आँचल खूब कसकर बाँध रखा है। स्वामी की इस रसिकता पर मन-ही-मन हँसती हुई जब वह धीरे-धीरे गाँठ खोलने लगी, तब कपड़े का सामान्य-सा झटका लगने के कारण उसके स्वामी जाग उठे।

लावण्य को स्वप्न में भी इस बात की कल्पना नहीं हुई थी कि स्वामी जागकर ऐसा उपद्रव खड़ा करेंगे। उन्होंने ज़ोर से उसका हाथ पकड़ लिया और तीक्ष्ण स्वर से पूछा—कहाँ? इतनी रात के समय कहाँ जा रही हो?

लावण्य ने समझा कि शायद स्वामी की नींद अभी तक पूरी तरह से खुली नहीं है, इसलिए उसने हँसते हुए कहा—तुम क्या स्वप्न देख रहे हो? मैं हूँ। हाथ छोड़ो। दुख रहा है।

लेकिन स्वामी ने और भी तीव्र स्वर से कहा—हाँ हाँ, तुम हो। मैं तुम्हें पहचानता हूँ। जल्दी बतलाओ कि तुम कहाँ जा रही थीं; नहीं तो अभी तुम्हारी जान मार डालूँगा।

अब लावण्य कुछ नाराज़-सी हुई। उसने कहा—जान मारने से पहले ज़रा अच्छी तरह आँखें खोलकर तो देखो। सवेरा हो गया है। क्या उठना नहीं होगा?

पूरबवाली खिड़की में से आनेवाली लाल आभा ने उस समय तक कमरे का भीतरी भाग भी कुछ-कुछ लाल कर दिया था। उस तरफ देखकर स्वामी ने उसका हाथ छोड़ दिया और तब वे कुछ देर तक चुप रहे। इसके बाद उठकर हँसते हुए उन्होंने कहा—मैं तो तुम्हें ही चोर समझकर थोड़ी देर में तुम्हारा खून ही कर डालता। मैं बहुत ही ख़राब स्वप्न देख रहा था।

हो सकता है कि उनकी वह बात ठीक हो। लेकिन फिर भी लावण्य के मन में सदा कुछ सन्देह बना रहता था। कपड़े में गाँठ लगानेवाली रसिकता उसे बहुत ही बेढब जान पड़ती थी।

❀ ❀ ❀

लावण्य की समझ में यह तो नहीं आता था कि उसके स्वामी कैसे हैं, परन्तु इस घर की वह सुन्दरी युवती उसे और भी अधिक दुर्ज्ञेय जान पड़ती थी। अवस्था में वह लावण्य से कुछ बड़ी थी। उसका नाम था माधुरी। लावण्य के पास यह जानने तक का कोई उपाय नहीं था कि वह इस घर की कौन है, और इस परिवार के साथ उसका क्या सम्बन्ध है। लावण्य के स्वामी को वह 'भइया' कहकर बुलाया करती थी, इसलिए लावण्य समझती थी कि वह उनकी बहन की जगह कोई होगी। लेकिन सिर्फ चेहरा देखने से ही नहीं, बल्कि उसके आचरण से भी वह बात निस्सन्देह रूप से जानी जाती थी, कि वह उनकी सगी बहन नहीं है।

यह भी कहना असम्भव था कि माधुरी का अभी तक ब्याह हुआ है या नहीं। वह चौड़े किनारे की साड़ी पहनती थी, हरदम उसके सारे शरीर में बहुमूल्य अलंकार झलमलाते रहते थे, पैरों में अलता लगा रहता था, बिम्बाफल की तरह उसके दोनों होंठ हर दम पानों से रँगे रहते थे और वह दिन भर चित्र की तरह सजी रहती थी। लेकिन फिर भी उसके माथे में सिन्दूर कभी दिखाई नहीं देता था; और ऐसा जान पड़ता था कि उसकी विवाह की अवस्था बहुत दिन हुए, पार हो चुकी है।

उसकी गति-विधि भी बहुत ही रहस्यमयी थी। कभी इस बात का पता ही नहीं चलता था कि वह दिन भर कहाँ रहती है। कभी-कभी वह अचानक न ज़ाने

कहाँ से आकर लावण्य को गले लगा लेती थी, और मुँह चूमकर कहती थी—भई, मैं तो तुम्हें बहुत ही चाहने लग गई हूँ। चलो, तुम्हे लेकर कहीं भाग चलूँ।

बिलकुल अर्थ-हीन और असम्बद्ध बात ! तो भी लावण्य को हँसकर उत्तर देना पड़ता था—भागकर कहाँ चलोगी ?

'क्यों, दिल्ली चलूँगी, लाहौर चलूँगी। तुम वर बनना, और मैं तुम्हारी बहू बनूँगी। तुम लाँग कसकर धोती पहनना और अपना बाल कतरवाकर कुरता पहनकर और कन्धे पर दुपट्टा रखकर निकलना और मैं तुम्हारे साथ घूँघट काढ़कर चला करूँगी। लेकिन तुम रोजगार करके मुझे खिला सकोगी न ?'

लावण्य कहती—और तुम्हीं वर बनो न।

'दुत, यह बात मानेगा कौन ? मेरा यह रूप क्या मरदाने चुने हुए दुपट्टे के नीचे छिप सकेगा ?'

इतना कहकर माधुरी हँसती हुई अदृश्य हो जाती थी। कभी-कभी ऐसा होता था, कि थोड़ी देर बाद ही फिर लौट आती थी और रसोई के काम में लगी हुई लावण्य के व्यंजन की कड़ाही में एक चुटकी नमक डालकर कहती थी—मालूम होता है कि तुमने अपने पिता के घर में खाली खाना ही सीखा था। रसोई बनाना खाक-पत्थर भी नहीं सीखा था।

लावण्य घबराकर कहती—हैं बीबीजी, यह तुमने क्या किया ! नमक तो मैं पहले एक बार डाल चुकी हूँ।

'तब तो और भी अच्छी बात है। भइया जब खाने बैठेंगे, तब उनका मुँह कड़ुआ ज़हर हो जायगा और तुम गालियाँ खाओगी।'

इतना कहकर माधुरी हँसने लग जाती थी। और उसकी वह हँसी ऐसी होती थी, जिसे देखकर सभी अपराध और सभी अन्याय क्षमा किये जा सकते थे।

चूल्हे पर से कड़ाही नीचे उतारकर लावण्य हँसती हुई कहती थी—तुम भारी दुष्ट हो !

'और तुम लक्ष्मी की सवारी उल्लू हो।' कहकर और गुस्सा दिखलाती हुई माधुरी चली जाती थी। लावण्य हँसकर रह जाती थी।

* * * *

माधवी का रंग-ढंग ऐसा ही था। लावराय उसके साथ बिना प्रेम किये रह ही नहीं सकती थी। इस भयंकर भवन में लावराय का शंकित और सन्त्रस्त मन केवल माधुरी के पास पहुँचकर ही शान्त होता था। पहले ही दिन उसे उसके अद्भुत आचरण का परिचय मिल गया था। तो भी वह उस पर मुग्ध थी।

जिस रोज़ लावराय की सुहाग-रात थी, उस रोज़ न तो कोई आयोजन ही हुआ था और न कोई विशेष व्यवस्था ही हुई थी। लावराय के पिता के घर से जो मज़दूरनी आई थी, वह उस समय तक मौजूद थी। इन लोगों के इस तौर-तरीक़े के बारे में पहले तो वह बहुत देर तक खूब ज़ोर-ज़ोर से अपने अनेक कठोर मन्तव्य सबको सुनाती रही; और जब उसने देखा कि उन सब बातों का भी कोई फल नहीं हो रहा है, तब अन्त में वह स्वयं ही तीसरे पहर से संध्या तक लावराय का साज-सिंगार करती रही और रात होने पर वही उसे शयनागार में ढकेल आई थी।

बिलकुल निर्जन कमरा था। लावराय को बहुत देर तक चुपचाप उस कमरे में अकेले ही बैठे रहना पड़ा था, जिससे उसकी लज्जा और भय की सीमा नहीं रह गई थी। माधुरी ने सवेरे ही एक बार उसे अपनी शकल दिखलाई थी, और उसके बाद वह जो ग़ायब हुई थी, सो दिन भर वह फिर कहीं दिखाई ही नहीं दी। उसके स्वामी भी कहीं बाहर गये हुए थे। कौन कह सकता था कि वे कब लौटकर आयेंगे? लावराय सोच रही थी कि न जाने कब तक मुझे इस निर्जन स्थान में अकेले बैठे रहना पड़ेगा; और यहाँ से उठकर मैके की मज़दूरनी के पास चलना ठीक है या नहीं। उसी समय किसी ने पीछे से आकर उसकी आँखें मूँदी जिससे वह चौंक पड़ी। पहले उसने समझा था कि शायद मेरे स्वामी ही आये हैं, लेकिन उसके बाद तुरन्त ही यह बात उसकी समझ में आ गई थी कि पुरुष की उँगलियाँ इतनी कोमल नहीं हो सकतीं। साथ-ही-साथ हँसी का शब्द सुनकर उसका वह सन्देह सहज में ही दूर हो गया था।

माधुरी खिलखिलाकर हँसी और उसने लावराय की आँखों पर से हाथ हटाकर हाथ-मुँह नचाकर और आँखों की विलक्षण भाव-भंगी बनाकर कहा—तुम्हारा भी कितना हौसला है! समझ रही थीं कि वर ने ही आकर आँखें बन्द की हैं! वर को ऐसी ही ग़रज़ पड़ी है!

उस समय तक दोनो में बहुत अधिक परिचय नहीं हुआ था, लेकिन फिर भी लावण्य बिना बोले न रह सकी। उसने कहा—तुम समझती थीं कि मैं यही सोच रही थी ?

'तब नहीं तो और क्या सोच रही थीं ? बतलाओ तो सही। सोच रही थीं कि उस महल्ले के वृन्दा वैष्णव ने आकर आँखे बन्द की हैं ?'

'अरे हटो।' कहकर ज्यों ही लावण्य ने सिर उठाकर देखा, त्यों ही वह बिलकुल अवाक् हो गई।

अपने सर्वाङ्ग में फूलों के गहने पहनकर माधुरी उस समय साक्षात् वन-देवी की ही तरह सजकर आई थी। उसका वह रूप देखकर उसकी तरफ से निगाह हटाना बहुत मुश्किल था। न जाने उसने इतने फूल कहाँ से इकट्ठे किये थे।

'इस तरह भौंचक्की होकर क्या देख रही हो ?' इतना कहकर माधुरी उसके पास बैठ गई और तब फिर बोली—भला बतलाओ तो सही कि आज तुम्हारी सुहागरात है या मेरी ?

कैसी विलक्षण बात थी! तो भी लावण्य ने हँसते हुए कहा—मालूम तो होता है कि तुम्हारी ही है।

'बराबर अन्त तक यही समझती रहोगी न ?' इतना कहकर माधुरी ने अपने मधुर हास्य से वह सारा कमरा गुँजा दिया और तब वह लावण्य को कमरे से बाहर की तरफ ढकेलती हुई बोली—अच्छा तो फिर अब तुम निकलो इस घर से। देखूँ तुम्हारे कलेजे का जोर।

लावण्य हँस रही थी। लेकिन माधुरी सचमुच उसे ढकेलती हुई दरवाजे तक ले गई; परन्तु दरवाजे पर पहुँचकर वह सहसा रुक गई और बोली—यह लो, महिम भइया तो आ ही गये। मालूम होता है कि इनसे भी बरदाश्त नहीं हुआ। लो भइया, अभी तक तुम्हारी बहू ज्यों-की-त्यों और साबुत मौजूद है। तुम्हें आने में जरा-सी भी और देर होती तो मैं तो इसे ढकेलकर घर के बाहर ही कर आती।

महिम दरवाजे पर खड़े हुए थे। उनका मुख बहुत ही गम्भीर हो रहा था। ऐसा जान पड़ता था कि माधुरी का यह परिहास उन्हें स्पर्श भी नहीं कर पाया था।

स्वामी के सामने आ जाने के कारण लावण्य मारे लज्जा के एकदम से गड़ी जा रही थी और अब वह न इधर ही आ सकती थी और न उधर ही जा सकती थी। लेकिन माधुरी ने फिर उसे जबरदस्ती घसीटते हुए ले जाकर बिछौने पर बैठा दिया और कहा—लो, अब जल्दी से इस पर दखल कर लो। अब मैं जाती हूँ। आखिर आदमी का ही मन तो ठहरा, उसमें मति-भ्रम होते कितनी देर लगती है!

महिम की ओर देखकर हँसती हुई माधुरी कमरे के बाहर चली गई थी, लेकिन थोड़ी ही देर बाद वह फिर लौट आई थी और दरवाजे पर से ही उसने एक पोटली कमरे के अन्दर फेंककर कहा था—महिम भइया, अपनी बहू के फूलों के गहने ले लो। मैं जल्दी में देना भूल गई थी।

महिम का मुख उस समय भी गम्भीर था। उन्होंने वह पोटली उठा ली, ज्यों ही उन्होंने बिछौने पर रखकर वह पोटली खोली, त्यों ही उन्होंने देखा कि चाहे जल्दी-जल्दी खोलने के ही कारण हो और चाहे पोटली में बँधे रहने के ही कारण हो, उसमें के सब फूल चटक गये थे।

माधुरी के सब आचरणों का अर्थ चाहे लावण्य की समझ में आया हो और चाहे न आया हो, लेकिन लावण्य उसी दिन से उसके साथ प्रेम करने लग गई थी।

× × ×

उस रहस्य-पुरी में इसी प्रकार दुविधा और द्वन्द्व में, भय और आनन्द में, लावण्य के दिन एक प्रकार से बीत रहे थे। उसके पिता के घर में उसकी विमाता का शासन था, इसलिए वहाँ सुख के साथ उसका विशेष परिचय नहीं हुआ था। और इसीलिए यहाँ के दुःख और अभाव के कारण उसे बहुत अधिक विचलित भी नहीं होना पड़ा था। इस घर का रहस्य भी और भय भी धीरे-धीरे उसके लिए मामूली और रोज का काम होता जा रहा था। उसके पिता के घर से कभी-कभी कोई उसकी खोज-खबर लेने के लिए आ जाया करता था; लेकिन फिर भी वह अच्छी तरह समझती थी कि मैं अब फिर कभी लौटकर वहाँ नहीं जा सकती। और ऐसा जान पड़ता था कि वहाँ जाने की उसकी इच्छा भी नहीं थी। यहाँ रहकर किसी प्रकार जीवन के दिन बिताने के लिए जिस साहस और सहिष्णुता की आवश्यकता थी, उसका भी बहुत कुछ संचय वह कर ही चुकी थी। लेकिन वह बात होने की नहीं थी...

सवेरे का समय था। उस दिन कहीं दूर जाना था, इसलिए महिम जल्दी-जल्दी भोजन आदि से निवृत्त हो गये थे। उन्हें पान देने के लिए लावण्य कमरे में गई थी। महिम ने उसे खींचकर गले से लगाते हुए कहा—क्यों लावण्य, अगर आज रात को मैं लौटकर न आ सका तो रात को अकेले सोने में तुम्हें डर त न लगेगा ?

उसे भय तो होता ही था ; और होना चाहिये भी था ; लेकिन उसकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि स्वामी से यह बात कहकर उन्हें उद्विग्न करना ठीक होगा या नहीं ; और इसीलिए वह चुप हो रही।

महिम ने उससे फिर पूछा—क्यों जी, बोलो न, डर लगेगा ?

कुछ इधर-उधर करके लावण्य ने कहा—नहीं, डर काहे का !

"नहीं, डर काहे का। भला तुम्हें डर क्यों होने लगा ? तुम तो अकेली ही रहना चाहती हो। अकेले रहना ही तुम्हें अच्छा लगता है। क्यों ठीक है न ?"

उस स्वर में व्यंग्य का आभास देखकर और विस्मित होकर लावण्य ने सिर उठाकर देखा कि स्वामी का मुख अस्वाभाविक रूप से कठोर हो गया है। इतने दिनों में स्वामी के अद्भुत आचरण के साथ उसका अच्छी तरह परिचय हो गया था। उसने कुछ दुःखित भाव से कहा—क्या यह कहने में भी कोई दोष है कि मुझे डर नहीं लगेगा ? मैं तो नहीं समझती।

"नहीं, इसमें दोष क्या है !" कहकर महिम ने वह बात मानो दबा दी। लेकिन कुछ ही देर बाद उन्होंने उसे बुलाकर कहा—जाने से पहले मैं तुम्हें एक चीज़ दिखला देना चाहता हूँ। देखोगी ?

"कौन-सी चीज़ ?"

"मेरे साथ आओ।"

लावण्य यह सोच रही थी कि स्वामी के इस लड़कपन में उनका साथ देना चाहिये या नहीं ; लेकिन महिम ने उसे यह बात अच्छी तरह सोचने का अवसर ही न दिया। हाथ पकड़कर एक तरह से जबरदस्ती घसीटते हुए उन्होंने उसे लाकर जिस जगह खड़ा किया था, वह उस महल का एक पुराना परित्यक्त और अव्यवहार्य कमरा था।

उस कमरे का मोरचा लगा हुआ ताला खोलकर और लावण्य को उसके अन्दर करके और उसके हाथ में एक दीयासलाई देकर महिम ने कहा—अच्छा जरा यह दीयासलाई जलाओ तो सही।

लावण्य दीयासलाई जला रही थी। हठात् उसे पीछे से दरवाजा बन्द होने का शब्द सुनाई दिया। जब उसने विस्मित होकर पीछे की ओर देखा, तो उसे मालूम हुआ कि स्वामी ने बाहर जाकर उस कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया है। केवल इतना ही नहीं, उसे दरवाजे की सिकड़ी बन्द होने का भी शब्द सुनाई दिया।

भला यह कैसी हँसी थी! लावण्य ने कहा—यह क्या करते हो? मैं भण्डार खुला छोड़ आई हूँ। यह हँसी करने का समय नहीं है। जल्दी दरवाजा खोलो।

लेकिन दरवाजे के बाहर से कोई शब्द नहीं सुनाई दिया।

लावण्य ने फिर कहा—भला यह भी कोई लड़कपन करने का समय है। तुम्हारी जूठी थाली और कटोरियाँ सब पड़ी हुई हैं। बूआजी ने या बीबीजी ने भी अभी तक खाया नहीं है। दरवाजा खोलो।

लेकिन फिर भी किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। अब लावण्य को डर लगने लगा। अँधेरे में उस कमरे के अन्दर कहीं कुछ भी दिखाई नहीं देता था। केवल जगह-जगह अनेक प्रकार के शब्द सुनाई पड़ते थे। लावण्य ने दरवाजे पर जोर से धक्का मारा और ऐसे उच्च कातर स्वर से, जो नई बहू को कभी शोभा नहीं देता, पुकारा—यह सब क्यों कर रहे हो? खोल दो। मुझे डर लगता है।

लेकिन फिर भी कहीं किसी का कोई शब्द या आहट नहीं सुनाई दी। वह अब धीरे-धीरे अपने स्वामी को पहचानने लग गई थी, इसलिए उसे खयाल आया कि शायद वे दरवाजा बन्द करके यहाँ से चले ही गये हों, तो? यदि यह क्षणिक परिहास न हो, तो?

यह सोचते ही मारे भय के उसके सारे शरीर में रोमांच हो आया। यदि वह यहाँ चिल्लाती-चिल्लाती अपना गला भी फाड़ डालती, तो भी वह अच्छी तरह जानती थी कि यहाँ से पुकारने पर कोई सुन नहीं सकेगा। कौन जाने, इस अँधेरे, निर्जन और परित्यक्त घर में उसे सारा दिन और सारी रात किस तरह बितानी पड़ेगी। मारे आशंका और उद्वेग के वह रोने लगी और फिर उसने एक बार

स्वामी से प्रार्थना करते हुए कातर स्वर से कहा—मैं तुम्हारे पैरों पड़ती हूँ, खोल दो। क्यों मुझे इस तरह कष्ट दे रहे हो?

लेकिन उसकी वह प्रार्थना किसी ने नहीं सुनी। यह भी नहीं जान पड़ता कि उसकी वह प्रार्थना सुननेवाला वहाँ कोई था।

लावण्य को इस प्रकार वहाँ कितना समय बिताना पड़ा, इसका उसे पता ही न लगा। जब भय की चरम अवस्था वह पार कर चुकी, उस समय मारे अवसाद के उसका सारा शरीर और मन प्रायः निष्पन्द हो गया था। एक बार उसे ऐसा जान पड़ा कि मानो कोई दरवाजे के पास से होकर जा रहा है। उसने अपनी सारी शक्ति लगाकर और खूब जोर से चिल्लाकर पुकारा—कौन?

बाहर का पैरों का शब्द रुक गया।

लावण्य ने अस्फुट स्वर से फिर पुकारा—मुझे खोल दो।

तुरंत ही मधुर हास्य-ध्वनि के साथ सुनाई दिया—अरे तुम यहाँ हो!

इसके बाद सिकड़ी खोलकर और कमरे के अन्दर प्रवेश करके माधुरी ने कहा—और मैं यह सोचकर निश्चिन्त हो बैठी थी कि तुम भाग गई हो। देखो तो भला, यह तुम्हारा कितना बड़ा अन्याय है! इस तरह भी कोई आदमी को हताश करता है?

उसकी बातें ही ऐसी होती थीं, जिन्हें सुनकर एक बार मुरदा भी हँस पड़े। लावण्य ने म्लान हँसी हँसकर कहा—बीबीजी, भला मैं यमराज के घर को छोड़कर और कहाँ भागकर जाऊँगी।

माधुरी ने उसके मुँह के पास मुँह ले जाकर और मानो बहुत ही आग्रह-पूर्वक कहा—दुत्, तुम यमराज के घर क्यों जाने लगीं! क्या दुनिया में और कोई जगह नहीं है? अगर तुम्हें भागना हो तो मुझे बतला दो। मैं तुम्हारे लिए सब बन्दोबस्त कर दूँगी। घर की मक्खी तक को पता नहीं लगने पावेगा।

उसकी बातें सुनकर इतने दुःख के समय भी लावण्य के चेहरे पर दोबारा हँसी दिखायी दी। कुछ देर तक चुप रहने के बाद उसने पूछा—क्यों बीबीजी, तुम बतला सकती हो कि आखिर वे इस तरह की बातें क्यों करते हैं? भला मेरा क्या अपराध है?

"तुम्हारा अपराध नहीं है? तुम क्यों मरने के लिए इस घर में आई थीं? मैंने तुम से भागने के लिए कहा, तो तुमने उसका कोई खयाल ही नहीं किया।

यह तुम्हारा अपराध नहीं है ?" इसके कुछ ही देर बाद उसने गम्भीर भाव से कहा—तुम जानती हो कि इस घर की यह दशा क्यों है ?

लावण्य ने उसके इस प्रकार के स्वर से विस्मित होकर उत्सुकतापूर्वक पूछा—क्यों, क्या बात है ?

माधुरी के उत्तेजित कंठ से सुनाई पड़ा—स्त्रियों के शाप से ! हजारों स्त्रियों के शाप ने इस मकान के हर एक कमरे की दीवार तक को चलनी बना दिया है। सात पीढ़ियों से इनके यहाँ यही होता चला आता है। ऐसा कोई अपमान नहीं, ऐसी कोई दुर्दशा नहीं जो ये लोग स्त्रियों की न करते हों। भला उन लोगों का अभिशाप और कहाँ जायगा ? जिन स्त्रियों के साथ तुम्हारे पति ने अनेक प्रकार के मनमाने अत्याचार किये हैं, उन्हीं की दुश्चिन्ता आज उनका कलेजा काट-काटकर खा रही है। और वही इस वंश के अन्तिम दीपक हैं।

ये सब बातें करती हुई वे दोनों आँगन के प्रकाश में आ पहुँची थीं। उस प्रकाश में माधुरी का चेहरा देखकर लावण्य के आश्चर्य की सीमा न रही। अकारण ही अमानुषिक क्रोध और घृणा के कारण उसका वह परम सुन्दर मुख बहुत ही वीभत्स हो गया था।

उस दिन माधुरी की सब बातें लावण्य की समझ में अच्छी तरह नहीं आई थीं। लेकिन फिर भी उसके मन के एक कोने में अकारण ही एक आतंक का संचार हो गया था। और स्वामी के आचरण से वह आतंक क्रमशः बढ़ता ही गया। उसके स्वामी को प्रायः ही किसी-न-किसी काम से दूर जाना पड़ता था। अब किसी बहाने से नहीं, बल्कि बिलकुल सीधी तरह से कहकर और जबरदस्ती महिम उसे कमरे के अन्दर बन्द करके और बाहर से ताला लगाकर जाया करते थे। बस इसमें सान्त्वना की केवल इतनी ही बात थी कि महिम के चले जाने पर माधुरी आकर उसे खोल दिया करती थी। और स्वामी के आने से कुछ पहले वह उसे फिर कमरे में बन्द करके बाहर दरवाजे पर ताला लगा दिया करती थी।

× × ×

लेकिन एक दिन उन लोगों का कौशल खुल गया। महिम उसको बन्द करके चला गया था। माधुरी ने आकर दरवाजा खोला और कहा—अगर एक तमाशा देखना हो तो आओ।

"कैसा तमाशा ?"

"तुम देखोगी कि बूआजी के घर में क्या है ? वह आज भूल से अपने कमरे में बिना ताला लगाये ही कहीं चली गई हैं।"

लावण्य ने डरते हुए कहा—नहीं नहीं, कोई जरूरत नहीं। बूआजी आ जायँगी।

लेकिन माधुरी छोड़नेवाली नहीं थी। उसने कहा—आने दो न। दो-दो जवान लड़कियों को वे मार तो डालेंगी ही नहीं।

इतने पर भी लावण्य आपत्ति कर रही थी, लेकिन फिर भी माधुरी उसे जबरदस्ती खींचती हुई ले गई। यह बात नहीं थी कि बूआ ताला बन्द करना बिलकुल भूल गई हों, बल्कि उस दिन संयोग से ही ताले में ताली ठीक तरह से नहीं लगी थी ; इससे ताला खुला ही रह गया था। माधुरी ने दरवाजा खोलकर लावण्य का हाथ पकड़कर उसे खींचते हुए उस कमरे में प्रवेश किया।

वह कमरा बिलकुल अँधेरा था। जब उस अन्धकार में कुछ देर बाद आँखें अभ्यस्त हो गईं, तब दिखाई दिया कि उस छोटे कमरे में कहीं नाम को भी कोई जगह खाली नहीं है। छोटे-बड़े सन्दूक, पिटारे, बरतन-भाँड़े और कपड़े-लत्ते आदि से सारा कमरा बिलकुल छत तक लदा है।

लावण्य ने डरते-डरते कहा—देख तो लिया। चलो, अब चलें।

माधुरी ने कहा—दुत्, अभी तो तुमने कुछ देखा ही नहीं।

इसके बाद झट से एक सन्दूक खोलकर उसमें से पहली ही चीज जो उसने निकाली, अँधेरा होने पर भी उसका स्वरूप समझकर लावण्य चौंक पड़ी। वह पुराने ज़माने का एक जड़ाऊ गहना था।

लावण्य को ऐसा जान पड़ा कि अन्धकार में उसके मूल्यवान् रत्न किसी हिंस्र सरीसृपों के नेत्रों की तरह मेरी ओर क्रूर दृष्टि से देख रहे हैं। बिना किसी विशेष कारण के ही मारे भय के लावण्य का कलेजा सूख रहा था। उसने कहा—चलो बीबीजी, मुझे यह सब अच्छा नहीं लगता।

"तुम तो हो डरपोक।"

इतना कहकर माधुरी ने उस सन्दूक की सभी चीजें जमीन पर उलट दीं और कहा—लो, इनमें से अपने लिए कुछ पसन्द कर लो। भला बुढ़िया के घर में इन सब चीजों के जमा रहने से क्या फायदा है ?

"नहीं नहीं बीबीजी, चलो ।"

लेकिन माधुरी की दोनों आँखें न जाने किस प्रकार की उन्मत्तता से जल रही थीं । वह सन्दूक के बाद सन्दूक और पिटारे के बाद पिटारा जमीन पर उलटती चली जा रही थी । उसने कठोर स्वर से कहा—ठहरो, जरा सब चीजें देख तो लें ।

इस प्राचीन और लुप्तप्राय परिवार के शायद सभी गहने, रुपये, मोहरें और जवाहिरात आदि सारी सम्पत्ति उस बुढ़िया ने अपने कमरे में जमा कर रखी थीं । यही सम्पत्ति लेकर वह दिन-रात डाइन की तरह उस पर बैठी रहती थी । ऐसा जान पड़ता है कि अन्धकार में उन्हीं सब चीजों की तरफ बराबर देखते रहने के कारण ही प्राणहीन पत्थरों की अस्वाभाविक ज्योति की प्रखरता उसकी आँखों में भी भर आई थी ।

सहसा लावण्य अस्फुट स्वर से चिल्ला उठी—अरे बाप रे ! माधुरी ने सिर उठाकर देखा कि बुढ़िया दरवाजे पर खड़ी हुई हिंसक जन्तु की तरह उन लोगों की तरफ देख रही है । लेकिन ये सब बातें केवल क्षण ही भर के लिए थीं । इसके बाद तुरन्त ही सुनाई पड़ा कि बुढ़िया ने जोर से वह दरवाजा बाहर से बन्द कर दिया, और उसकी सिकड़ी लगा दी । साथ ही साथ माधुरी के मधुर हास्य से वह कमरा भी गूंज गया । लावण्य ने कातर स्वर से कहा—क्यों बीबीजी, अब क्या होगा ?

"अरे होगा क्या ? आओ, गहने पहनें ।" यह कहकर माधुरी ने मोतियों का एक हार लावण्य के ऊपर फेंक दिया ।

× × ×

दिन भर तो वे दोनों उस कमरे के अन्दर बन्द रहीं और सन्ध्या को महिम ने बूआ के साथ आकर दरवाजा खोला । यह नहीं कहा जा सकता, कि इस बीच में बूआ और महिम में क्या-क्या बातें हुई थीं ; लेकिन हाँ, महिम ने इस घटना के सम्बन्ध में लावण्य या माधुरी से एक शब्द तक न कहा । सारे शरीर में बहुत से गहने पहनकर और बूआ की ओर उपेक्षा की दृष्टि से देखती हुई और महिम की ओर देखकर व्यंग्यपूर्वक हसती हुई माधुरी उस कमरे से निकलकर चली गई । बूआ या महिम में से किसी ने रोका तक नहीं ।

वह रात चुपचाप बीत गई। फिर सवेरे से दोपहर तक भी कोई बात नहीं हुई। तीसरे पहर अचानक महिम ने आकर कहा—चलो, चलना होगा।

लावण्य ने आश्चर्य-पूर्वक अपने स्वामी के मुख की ओर देखा; लेकिन वह कुछ कह न सकी।

महिम ने फिर कहा—उठो, चलना होगा।

'कहाँ?'

'यह मैं नहीं जानता।'

यह कहकर महिम ने अलगनी पर से एक चादर उतारकर लावण्य के ऊपर फेंक दी और तब फिर कहा—और कुछ लेने की जरूरत नहीं। उठो।

उसका वह स्वर सुनकर लावण्य डर गई और चुपचाप उठकर खड़ी हो गई। केवल एक बार उसने कातर स्वर से पूछा—कहाँ चलोगे?

महिम ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने जोर से लावण्य का एक हाथ पकड़ लिया, और तब वहाँ से धीरे-धीरे चलने लगा।

फिर वही अँधेरा और सुरंग की तरह का रास्ता और फिर वही घुटनों तक का जंगल। ईंटों और लकड़ियों के स्तूप पार करती हुई लावण्य अपने स्वामी के साथ बाहर निकली। पीछे की ओर मकान के आँगन में अपने सारे शरीर को अलंकारों से भूषित किये हुए सुन्दरी माधुरी उन लोगों की यात्रा के मार्ग की ओर कौतुक-भरी दृष्टि से देख रही थी; और सिर्फ यही बात लावण्य वहाँ से देखकर आई थी। इस मकान में पहले-पहल प्रवेश करने के समय जिस मधुर हास्य ने उसकी अभ्यर्थना की थी, वही मधुर हास्य आज इस बिदाई के समय उसके कानों में गूँजने लगा।

× × ×

ट्रेन में रास्ते भर कोई बात-चीत नहीं हुई। जिस समय वे लोग शहर में आकर पहुँचे, उस समय रात हो चुकी थी। सारे नगर पर आँधी और पानी का उच्छृङ्खल अत्याचार हो रहा था।

एक गाड़ी किराये की करके महिम अपने साथ लावण्य को लेकर उस पर जा बैठा। गाड़ीवान ने पूछा—सरकार, कहाँ चलना होगा?

"जहाँ तुम्हारा जी चाहे।"

सम्भवतः गाड़ीवान इस तरह की बातें पहले से सुना करता था। उसने फिर बिना और कुछ पूछे ही गाड़ी हाँक दी।

जब गाड़ी कुछ दूर बढ़ गई, तब महिम ने पहले-पहल लावण्य से बात की; और वह बात भी उसने बिलकुल एक नये आदमी की तरह की!

उसने कहा--लावण्य, मैंने तुम्हें बहुत कष्ट दिये हैं। मैं यह भी नहीं जानता, कि इतने दिनों तक मैंने तुम्हारे साथ जो व्यवहार किया है, उसके कारण तुम मन ही मन मेरे साथ घृणा भी करने लगी हो या नहीं। लेकिन लावण्य, आज मैं तुमसे यह अनुरोध करता हूँ कि तुम एक बात समझकर आज मुझे क्षमा कर दो। उस घर की वायु तक विषाक्त है। क्या यह बात जानकर तुम मुझे कभी क्षमा कर सकोगी?

अँधेरे में अपना दाहिना हाथ बढ़ाकर लावण्य ने अपने पति का हाथ ढूँढ़ा और उसे पकड़कर बहुत ही स्नेहपूर्ण स्वर में कहा--भला बतालाओ तो तुम इस तरह की बातें क्यों करते हो! अगर मेरे मन में कोई बात होती तो भला मैं इस तरह तुम्हारे साथ आ सकती?

महिम ने गाढ़ स्वर में पुकारा--लावण्य!

लावण्य ने अपने स्वामी की छाती पर सिर रखकर कहा--क्या?

"क्यों लावण्य, अब हम लोग फिर से साधारण मनुष्यों की भाँति गृहस्थी आरम्भ कर सकते हैं या नहीं? क्या सात पीढ़ियों का पाप इस शरीर से धो-बहाकर फिर नया जन्म प्राप्त किया जा सकता है? क्या किसी ऐसी जगह पहुँचकर, जहाँ हम लोगों को कोई न जानता हो, बिलकुल नया जीवन आरम्भकर मैं फिर से साधारण मनुष्य हो सकता हूँ?"

"क्यों नहीं हो सकते!"

"लावण्य, तुम नहीं जानतीं कि मेरे मार्ग में कितनी बाधाएँ हैं, और मेरे इस रक्त के अन्दर कितना विष जमा है। लेकिन इस विष से मैं अवश्य मुक्त हो सकता हूँ; पर केवल उस अवस्था में जब कि मुझे तुम्हारा प्रेम प्राप्त हो।"

"क्या मैं तुमसे प्रेम नहीं करती?"

"हाँ, करती हो। मैं जानता हूँ कि तुम मुझसे प्रेम करती हो; लेकिन अस्वस्थ मन में अकारण ही सन्देह उत्पन्न होता है। उस सन्देह के कारण मैं भी

व्यर्थ जल-जलकर मरता हूँ, और तुम्हें भी जलाता हूँ। लावण्य, शायद तुम सुनकर हँसोगी, लेकिन अगर तुम रोज मुझे इस बात का स्मरण करा दिया करो, तो मुझे अवश्य ही कुछ बल प्राप्त होगा।"

जब गाड़ीवान उस आँधी और पानी में उद्देश्य-विहीन भाव से चारों तरफ घूमता-घूमता हैरान हो गया, तब आखिर उसने कहा--सरकार, रात भर तो मैं इस तरह घूम नहीं सकता।

"अच्छा तो रोको।"

इतना कहकर उस आँधी-पानी में उस अपरिचित स्थान पर ही महिम हठात् लावण्य का हाथ पकड़कर गाड़ी पर से उतर पड़ा। किराया पाकर गाड़ीवान अवाक् हो गया; और यह वही जाने कि वह क्या सोचता और समझता हुआ वहाँ से चलता बना।

महिम ने पूछा--लावण्य, तुम्हें डर तो नहीं लगता न?

चादर से अपना शरीर खूब अच्छी तरह लपेटकर और स्वामी की छाती के और भी पास पहुँचकर लावण्य ने कहा--नहीं, लेकिन अब कहाँ चलोगे?

'जिधर तुम्हारी खुशी हो, उधर चलो। आँधी-पानी खतम होने पर हम लोग जहाँ चलकर पहुँचेंगे, वहीं समझेंगे कि हम लोगों का नया जन्म हुआ।'

लावण्य ने कुछ भी नहीं कहा। वह स्वामी का हाथ पकड़कर चुपचाप चलने लगी।

उद्देश्य-विहीन चलना था। उन लोगों को यह पता भी न चला कि किस समय हम लोग एक छोटी नदी के किनारे आ पहुँचे। महिम ने कहा--यह पुल पारकर उधर चलेंगे।

अबकी बार लावण्य ने कुछ इधर-उधर किया। उसने कहा--कौन जाने कि वह पुल टूटा है या कैसा है। अगर गिर पड़ो तो?

"तो तुम भी मेरे साथ गिर जाओगी। गिर सकोगी?"

फिर उसके नेत्रों की वही अद्भुत दृष्टि देखकर लावण्य चौंक पड़ी।

गाड़ी के निरापद आश्रय में लावण्य को अपने गले से लगाकर महिम ने जो स्वप्न देखा था, वह इतना रास्ता चलते-चलते महिम के मन से न जाने कब का लुप्त हो गया था। वह फिर सोचने लगा कि भला स्त्री के प्रेम का क्या विश्वास

किया जा सकता है ? उसके प्रेम का मूल्य ही क्या है ? आज जो स्त्री प्रेम करती है, उसी को कल विश्वास-घात करने में कितनी देर लगती है ! उसकी अपेक्षा इस मधुरतम मुहूर्त्त को काम में लाकर निश्चिन्त हुआ जा सकता है या नहीं ? इस सन्देह के झूले से सदा के लिए रक्षा पाकर उसका क्लान्त मन परम विश्राम प्राप्त कर सकता है। जो हमसे प्रेम करता है, वह यदि जीवन में हमारा अपमान करे, तो उसे मृत्यु में अमर बनाकर रखने में हानि ही क्या है ?

जिस समय लावण्य का हाथ पकड़कर महिम वह झूलेवाला पुल पार कर रहा था, उस समय उसने उसे अचानक नीचे ढकेल...

× × ×

शुरू में हमने जो बातें बतलाई थीं, वे इसी घटना के बाद की थीं। हमारी कहानी यहीं आकर समाप्त होती है। वह पुल पार करने के बाद लावण्य को लेकर महिम कहाँ गया, यह हम नहीं जानते। हमारी कल्पना के अन्धकार में वे दोनों विलीन हो गये हैं।

कौन जाने, हो सकता है कि माधुरी अभी तक उस जन-हीन ध्वंसावशिष्ट प्रासाद की कोठरियों में प्रेतनी की तरह घूमा करती हो। हो सकता है कि फिर कहीं जीवन के पुल पर से लावण्य को महिम ने कभी ढकेल दिया हो।

गंभीर

प्रबोधकुमार सान्याल

परिचय

[एक नवयुवक फेरीवाले के जीवन की एक रात की घटना। विचित्र आनन्द और वेदना के भीतर से उस रात को उसने जो अपने सारे जीवन का गौरव और पाथेय संचय किया था——उसी की कथा।]

[बहुत ही आधुनिक बंगाली लेखकों में प्रबोधकुमार सान्याल सबसे अधिक लोकप्रिय हैं। इनकी रचनाओं का कवित्वमय आवेदन, इनके वर्णन की पटुता और कहानियों की गम्भीर व्यंजना सभी को मुग्ध कर लेती है। प्रबोधकुमार ने अपेक्षाकृत सम्पन्न घर में जन्म लिया था। लेकिन फिर भी इन्होंने स्कूल की या कालेज की कोई विशेष शिक्षा नहीं प्राप्त की थी। किशोरावस्था से ही इन्हें देश-भ्रमण का बहुत बड़ा नशा था। इन्होंने भारतवर्ष के एक सिरे से दूसरे सिरे तक भ्रमण किया है। कभी शिकार में, कभी तीर्थ-यात्रा में, कभी खानाबदोशों की तरह पैदल चलकर इन्होंने बहुत-से देशों की यात्रा की है। इसी भ्रमण ने इनके कल्पना-प्रवण चित्त को विशेष रूप से हिला दिया है; और इसी कारण ये दिन पर दिन वेग से अजस्र कहानियाँ, उपन्यास और यात्रा-विवरण लिखते रहे हैं। किसी समय ये 'स्वदेश' नामक मासिक पत्रिका के सम्पादक थे। आज-कल ये 'युगान्तर' नामक पत्र के साहित्यिक सम्पादक का काम करते हैं। ये देखने में बहुत ही रूपवान्, निस्पृह नम्र और मिष्ट-भाषी और बन्धुवत्सल हैं। इनका व्यक्तिगत चरित्र इनकी रचनाओं की ही तरह मधुर तथा भावपूर्ण है।

प्रबोधकुमार सान्याल रचनाओं की दृष्टि से कुछ अधिक मात्रा में शरत्चन्द्र के अनुगामी हैं। लेकिन शरत्चन्द्र की अपेक्षा इनकी दृष्टि अधिकतर स्वच्छ है। शरत्चन्द्र ने जीवन को मूलतः स्त्री-पुरुष के सम्बन्ध की स्वाधीनता की दृष्टि से देखा था। जीवन के अन्यान्य अंग इस विचार से इनके साहित्य में केवल आनुषंगिक रूप से ही प्रकट हुए हैं। वस्तुतः वैज्ञानिक विचार से इस दृष्टि के समर्थन में चाहे जो कुछ कहा जाय, साहित्य-सृष्टि के क्षेत्र में विचित्रता और सुस्थता तथा अविकृत सौन्दर्य-प्रीति का अवश्य ही बहुत कुछ मूल्य है। प्रबोधकुमार की कहानियों में इस सौन्दर्य का आवेदन बहुत अधिक है। इसके सिवा इनकी कहानियों का वक्तव्य भी यथेष्ट मर्मान्त-स्पर्शी है। यद्यपि उनमें जगह-जगह उच्छ्वास का भी आधिक्य है, तो भी यदि सब पर एक साथ दृष्टि डाली जाय तो इनकी प्रायः सभी कहानियों में एक कमनीय रस-सम्पत्ति सहज में दिखाई देती है। इसके सिवा

इन्होंने प्रकृत जीवन का भी बहुत कुछ आस्वादन किया है और इसीलिए इनकी रचनाएँ कभी सत्य-भ्रष्ट नहीं होतीं। 'गंभीर' नामक कहानी इनकी एक बहुत प्रसिद्ध रचना है। इसमें इनकी रचनाओं के दोष और गुण दोनों ही बहुत अच्छी तरह दिखाई देते हैं।]

गंभीर

गया लाइन के एक जंक्शन स्टेशन पर एक गाड़ी आकर रुकी। गाड़ी आ रही थी पश्चिम से, और जा रही थी कलकत्ता।

गरमी की घनी अँधेरी रात, सन्-सन् हवा बह रही है। इतनी रात में वैसी भीड़ नहीं है। दो-एक आदमी चढ़े और चार-पाँच आदमी उतरे। गाड़ी की खिड़की के पास से एक पानवाला पुकार गया, एक दूसरे आदमी ने आवाज़ लगाई, 'पुरी-मिठाई'--एक लड़के ने झुन-झुना बजाकर अपनी मनिहारी का विज्ञापन किया, किन्तु गाड़ी के भीतर के निद्रित, अर्द्ध-जाग्रत तथा निस्पृह यात्रियों की ओर से कोई भी उत्तर न आया।

सीटी बजाकर जब गाड़ी धीरे-धीरे प्लेटफॉर्म छोड़ बहुत दूर पार चली गई, तो चारों ओर फिर रात्रि की निःशब्द छाया उतर आई। झींगुरों की एक-स्वर आवाज़ उस निस्तब्धता को और भी गंभीर बनाने लगी, और प्लैटफॉर्म के उदासीन प्रदीप उसी तरह अपलक नयन अन्धकार की ओर देखने लगे।

जो तीन यात्री अभी उतरे उनके पास सामान बहुत थोड़ा है। उनमें दो पुरुष हैं और एक स्त्री। दोनों पुरुषों के माथे पर बड़ी-बड़ी पगड़ियाँ बँधी हैं, तीनों ढीला पायजामा पहने हैं। समझता हू वे जाति के सिख हैं, पायजामे के सिवा स्त्री के शरीर पर एक पतले कपड़े का पञ्जाबी कुरता है, माथे पर एक हरे रंग की ओढ़नी है, जो कंधे के ऊपर से होती हुई शरीर के नीचे की ओर लटक रही है, और उसी के पास से होती हुई स्त्री के माथे की वेणी एकदम कमर के नीचे तक झूल रही है। पायजामे में धूलि-मैल तथा गाड़ी के दाग लगे हैं। पैरों में एक जोड़ा काला चप्पल है। दो पुरुषों में एक नवयुवक तथा दूसरा कुछ वयस्क है। काली दाढ़ी के भीतर से उसकी उम्र निश्चित करना मुश्किल है।

अपने मनिहारी के बक्स की दोनों ओर बगल में कपड़े की डोरी लगाकर उसे गले में लटकाये झुनझुनावाले ने अब तक इन्हें ही अपना लक्ष्य बनाया था।

मालूम होता है आज उसकी अधिक बिक्री नहीं हुई, एक बार झुनझुना बजाकर वह उनकी ओर आगे बढ़ा। स्टेशन की रोशनी से उसकी बड़ी झाँपी के भीतर के रखे हुए सुन्दर खिलौने तथा मनिहारी चमक रहे थे। आनन्द-दीप्त नयनों के साथ स्त्री के उस ओर घूमकर खड़ी होते ही वयस्क पुरुष आँखें लाल कर बोला--इतनी रात में फेरी...जाओ भागो...

लड़का अपना बक्स ले जल्दी-जल्दी वहाँ से खिसक गया। तीनों नर-नारी ने अपने सामानों को हाथ में लेकर, खोजते-खोजते प्लैटफार्म के एक किनारे के एक दूसरे दर्जे के वेटिंग रूम में प्रवेश किया।

भीतर और कोई प्रतीक्षमाण यात्री न था। दो बेंचों तथा इज़ीचेयर पर उन लोगों ने दखल जमाया। अपने सामानों को बीच के गोल टेबिल के ऊपर इकट्ठा कर रखा। स्त्री चञ्चल स्वभाव की थी। कमरे के भीतर घूम-फिरकर, चेयर और बेंच के चारो ओर चहल-कदमी कर, बड़े आइने में मुख देख, वयस्क पुरुष की आँख बचाकर युवक को कंकड़ मार, अल्प क्षण में ही इस मृतकल्प परित्यक्त कमरे को उसने जीवन की मुखरता, उल्लास, दीप्ति तथा गौरव से एक बार ही रोमांचित कर दिया। ऐसा प्रतीत होता है, मानो वह गाड़ी के भीतर सुदीर्घ पथ अतिक्रम करने के पश्चात् मुक्ति के आनन्द में अधीर हो उठी हो।

युवक तन्द्राकुल हो रहा था, इस स्त्री के साथ होड़ लगाने में असमर्थ वह धीरे-धीरे एक बेंच के ऊपर पैर फैलाकर सो गया। वयस्क पुरुष स्नेह की हँसी हँसते हुए स्त्री की ओर देखकर सुन्दर पञ्जाबी भाषा बोला--सारे रास्ते तुम सोई हो, और हम जगे बैठे रहे हैं! अब नींद आ रही है, देखो विरक्त न हो, चुपचाप बैठी रहो, गाड़ी आने में अभी बहुत देर है।

स्त्री इज़ी-चेयर पर बैठी पैर हिलाती हुई हँसने लगी। उसकी हर बात में हँसी रहती है। कमरे की छत की ओर देखने पर भी उसकी हँसी रोके नहीं रुकती।

बहुत समय बीत गया। युवक के नाक से विचित्र शब्द सुन स्त्री बार-बार उसकी ओर कौतुकवश देख रही थी। अकस्मात् स्प्रिंग के दरवाज़े की ओर देखकर उसके दो चञ्चल नयन-रूपी तारे स्थिर हो गये। सीधी हो वह उठ बैठी। मुँह घुमाकर देखा कि उसके चचा तन्द्रालीन हो रहे थे। शब्द पाकर वे जग उठेंगे; इसलिए उसने धीरे-धीरे अपने चप्पल निकाले, उसके बाद दबे पैर वह दरवाजे के पास आई।

दरवाजे के दोनों पल्लों के ठीक नीचे बाहर अपने मनिहारी के बक्स को रखे झुनझुनावाला बैठा है। इतना बड़ा लोभ वह और संवरण न कर सकी, धीरे से हँसी, उसके बाद जमीन की ओर झुक दरवाजे के नीचे की ओर से धीरे-धीरे एक हाथ घुसाकर छिपे-छिपे झट से काँच की एक पुतली उठाकर हाथ खींच लिया। झुनझुनावाले ने कोई उत्तर न दिया।

किन्तु स्त्री के मन में आगे ऐसी बात न आई थी। उसने सोचा था, यह चोरी निश्चय ही हाथों-हाथ पकड़ी जायेगी, उसके बाद थोड़ी देर तक खिंचाखिंची होगी, और ठीक उसके बाद वह जोर लगाकर हाथ खींच भाग आयेगी। लड़का हल्ला करते हुए कमरे में घुस आयेगा, तब वह बोलेगी, क्या तुमने मुझे लेते देखा है? मैं तो दरवाजे के इस पार थी! किसने हाथ बढ़ाया था, मैं क्या जानूँ?—लड़के को रोने-रोने होते देख वह उस पुतली को लौटा देगी! समवयसी लड़के को छकाने में उसे बड़ा आनन्द आता है!

उसकी हँसी रुक गई। चचा की ओर एक बार ताककर दरवाजे का एक पल्ला खींच मुँह बाहर निकाल उसने देखा कि लड़का दीवार में सर लगा अकातर भाव से सो गया है, इस समय सारे बक्स की चोरी होने पर भी शायद उसकी निद्रा भंग न होती। सारे दिन के परिश्रम की एक करुण क्लान्तिमय छाया उसके निद्रित मुख के ऊपर स्पष्ट दृष्टिगोचर हो रही है।

इस अवस्था में कोई भी इस तरह सो सकता है, स्त्री की धारणा में यह बात न आई। अपने स्वाभाविक अपरूप कोमल कंठ से उसने पुकारा—'दोस्त?'

फेरीवाले के जगकर जल्दी-जल्दी सीधा होते ही वह बोली—अगर तुम्हारी चीजें अभी चोरी हो जातीं?

लड़का अपनी मातृभाषा में बोला, चोरी? सर नहीं फोड़ डालूँगा?

उसके बाद ही उसने रबर की एक चिड़िया उठाई और उसका पेट दबाकर सीटी बजाते हुये कहा—लो, छः पैसा!

स्त्री मुसकिराते हुए पायजामा संभाल बक्स के पास बैठकर बोली—तुम्हारी सभी चीजें ठीक-ठीक हैं? देखो, देखती हूँ!

लड़का एकबार उधर आँख घुमा निश्चिन्त हो बोला—लो न तुम्हें क्या चाहिये...यह लो 'मनीबेग'—दो आना!

'मैं वह नहीं चाहती ।'

'अच्छा, यह लो ज़र्दा डिबिया—एक आना । जरी का फीता लोगी ! सात आने गज ! और यह लट्टू है, लट्ट, दो-दो पैसे !'

'मैं स्त्री हूँ, लट्टू क्या करूँगी !'

'तब क्या लोगी ? आरसी चाहिये मुँह देखने के लिए ? तुम्हारा मुख सुन्दर है !'

स्त्री उसके बोलने की भंगी देख उसके मुँह की ओर ताककर हँसी । बोली—नहीं चाहिये—तुम देखो अपना मुँह, दुष्ट !

नया लाइसेन्स पाकर लड़के ने पहले-पहल कारबार शुरू किया है, अभी तक उसे ग्राहक पहचानने का अच्छा ज्ञान न हुआ है । उसने कहा—तभी तो इतनी हैरानी है; बोलो तुम्हारे पास कितने पैसे हैं, उसी के मुताबिक चीज ढूँढ़कर देता हूँ ।

'पैसा ? पैसा मैं कहाँ पाऊँगी ?'

लड़के ने उसके मुख की ओर देखा, और उसके बाद श्लेषपूर्ण हँसी हँसते हुए दूसरी ओर मुँह घुमाकर बोला—जाओ, जाकर सोओ । इतनी देर तक मोल-तोल—

स्त्री डिगी नहीं, नाना प्रकार के चमकते और झलकते खिलौनों एवं भिन्न-भिन्न तरह की शौकीनी की चीजों के बीच उसकी दृष्टि खो गई थी । बायें हाथ की मुट्ठी में काँच की पुतली को पकड़े अपनी छाती के पास दबा रखा था । हो सकता है, वह सोच रही थी कि चोरी की वस्तु को लौटा देने की लज्जा को वह किस प्रकार सह सकेगी !

लड़के ने फिर इधर मुँह फेरा । इतनी बड़ी अवज्ञा सहकर भी जो बैठी रह सकती है उसके प्रति, न जाने क्यों, उसके मन में थोड़ी सहानुभूति पैदा हुई । दोनों ही प्रायः समवयसी थे । एक के पास यह विशाल पृथिवी केवल रूपक का कल्पलोक, आनन्द का मोह-मन्दिर, स्वप्न की अमरावती है ; और एक धूलि-कंटकाकीर्ण रूढ़ वास्तविकता का पथिक, जीवन-संग्राम का असहाय पदातिक,—यह पृथिवी उसके लिए है, अपरिसीम दुःखमय, असहनीय अभिज्ञतामय, अनन्त वेदनामय !

दोनों प्रायः सटकर बैठे। एक नदी मानो एक विस्तृत मरूभूमि की सीमा पर आकर रुक गई हो। उसकी उन सुन्दर आँखों में आँख गड़ाकर लड़के ने प्रश्न किया--तुम्हारा नाम ?

'नाम ? सुनोगे ? शान्तिदेवी। तुम्हारा नाम ?'

निर्जन स्टेशन तथा अन्धकाराच्छादित रेल-पथ की ओर आँख फेरते हुए थोड़ा हँसकर बोला--मेरा नाम सुनकर क्या करोगी ? तुम्हें तो याद रहेगा नहीं।

शान्ति बोली--तो मेरा नाम तुमने क्यों जान लिया ? बोलो जल्द।

लड़के ने बात बदल दी। नाम बताकर वह इस निभृत वार्तालाप की यवनिका को गिराना न चाहता था। बोला--तुमने कुछ खरीदा नहीं, मेरा काम किस तरह चलेगा बताओ तो ? आज सारे दिन में कुछ भी...तुम्हारा घर कहाँ है ?

शान्ति बोली--पंजाब ; अमृतसर।

'इधर कहाँ आई हो ?'

शान्ति ने इस बार मुख लज्जारक्त कर सर झुका लिया। लड़के ने जो प्रश्न किया, वह मानो किसी निकट आत्मीय का था। छोटी लड़की इस बीच भूल गई है कि लड़का एक साधारण फेरीवाला है, पूर्व परिचय उसके साथ एक बिन्दु-मात्र भी नहीं !

'चुप क्यों हो ?'

शान्ति बोली—मैं पहले-पहल अपने चचा के साथ इस मुल्क में आई हूँ।—और वह लड़का, जो फों-फों नाक बजा रहा है—वह भी हमारे साथ जा रहा है।—कहकर उसने दरवाजे के भीतर सोये युवक को दिखलाया।

'वह तुम्हारा कौन है ?...फिर चुप्पी साधी ? बोलोगी नहीं ?'

आखिरकार शान्ति स्वीकार करने के लिए बाध्य हुई, कि युवक के साथ उसका विवाह हुआ है। काका उसे नौकरी दिलाकर संसार चलाने के लिए काली मिट्टी लिये जा रहे हैं, चचा टाटा कम्पनी के बड़े नौकर हैं न।

लड़के ने अपनी वस्तुओं की ओर देखकर कुछ क्षण तक न जाने क्या सोचा, उसके बाद एक छोटा अलक्ष्य निःश्वास फेंककर बोला—अब मुझे जाना होगा, उस लाइन में अभी गाड़ी आएगी। और सुनो, उस समय तुमने मेरा नाम जानना चाहा था न ? मेरा नाम है बदरी।

यह बात कह उसके उठने की चेष्टा करते ही शान्ति बोली—इतनी रात में तुम्हारी चीज़ें कोई खरीदेगा नहीं। और मैं भी यहाँ अकेले बैठे-बैठे क्या करूँगी ?

बिलकुल अद्भुत प्रश्न ! आध घंटे के साधारण परिचय के बाद इतना बड़ा दावा किया जा सकता है यह बात बदरी को मालूम न थी। उसने समझा, शान्ति कम स्वार्थी नहीं ! हँसी-खेल की तरह थोड़ी देर तक उनका मन बहलाकर गाड़ी आते ही वह अपने स्वामी के साथ चली जायगी। उसके लिए छोड़ जायगी केवल निर्जन उदासीन स्टेशन, ग्राहक के लिए व्यर्थ की दौड़-धूप, और एक निःश्वास ! और उसे किसी एक दिन की कोई एक कहानी याद आई। नहीं, यह नहीं होने का ! क्षुब्ध अभिमान के साथ वह बोला—भाई, तुम जाओ अपने चाचा के पास।

'नहीं जाऊँगी, तुम क्या करोगे ? यह लो मैं बैठी हूँ।'—कहकर शान्ति खिलौने के बक्स के एक कोने को पकड़कर बैठ रही।

बदरी ने कहा—मेरा नुकसान कौन देगा ?

शान्ति बोली—तुम्हारी चीज़ तुम ही दोगे ?

बदरी ने फिर उसके मुख की ओर देखा। विदेशिनी की दोनों सुदीर्घ गंभीर काली आँखों में एक निर्लिप्त चाह भरी है। उसके माथे की वेणी उसकी गोद में झूल रही है। कोमल, पर मजबूत हाथ में एक सोने की चमकती चूड़ी है, छोटी अँगुली में एक छोटी अँगूठी है, दोनों पैर धूल-मैल लगकर और भी सुन्दर हो उठे हैं। शीत-प्रधान देश की स्त्री होने के कारण मुख के ऊपर रक्त की आभा स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ रही थी। बहुत-सी यात्री-गाड़ियों में बदरी ने अनेकों सुन्दरी स्त्रियों को देखा है, परन्तु इतनी रूपवती नारी को इतने निकट से उसने और कभी न देखा था। इस किशोरी का हाथ छुड़ाकर चले जाने की मानसिक दृढ़ता वह भूल गया था।

बदरी बहुत देर तक उसकी आँख में आँख गड़ाकर बोला—मैं तुम्हें पहचानता हूँ !

'हटो, मुझे कभी देखा है जो पहचानोगे ?'

अभिभूत होकर बदरी ने कहा—हाँ पहचानता हूँ, जरूर पहचानता हूँ, मैंने तुम्हें इसके पहले भी देखा है।

'कहाँ देखा था ?'

गर्दन घुमाकर बदरी ने एक बार रेल-पथ की ओर देखा। कहाँ देख रहा है वह क्या जाने ? स्मरण के उस पार तक उसने एक बार जल्दी से देखा। समुद्र-सहित पृथिवी तथा नक्षत्र-खचित अनन्त आकाश की सैर वह मन-ही-मन कर आया। उसके बाद गर्दन टेढ़ी कर बोला--हाँ, ठीक है, मैं तुम्हें पहचानता हूँ--इसके पहले देखा जो है।

उसके दृढ़ आत्म-विश्वास की ओर देख शान्ति हँसी। हँसकर बोली--तब इस जन्म में नहीं !

दोनों बैठकर गप्प करने लगे। शान्ति ने कहा--उन लोगों का घर अमृतसर में 'जलियानावाला बाग' के पास ही है, और थोड़ा आगे 'घंटा घर' है,--वही जहाँ तालाब के बीच में 'सोने का मन्दिर' है। उसके पिता रेशम का कारबार करते हैं। एक बार कभी वह लाहौर जाकर घुड़दौड़ देख आई थी !

बदरी ने कहा--उन लोगों का घर पास के ग्वालों के महल्ले में है। उसका बाप दूध बेंचता है। उसका मामा 'धर्मशाले' का दरबान है। एक बार आँधी में उन लोगों का मकान गिर गया था। उसकी मा पगली है। चम्पा नदी में वे प्रायः मछली पकड़ने जाया करते हैं।

एक चुप होता और दूसरा बोलता, इस तरह उनकी आत्म-कहानी धीरे-धीरे चलती रही। जो नया मित्र होता है, वह अपने साथ नवीन विस्मय लाता है। उसके हृदय की थाह लगाने के लिए सम्पूर्ण मन के कौतूहल की सीमा नहीं रहती ! आमने-सामने बैठ दोनों ने अपने-अपने अन्तर के कपाट खोल एक दूसरे को अभिनन्दित किया। पथचारी और गृहवधू के बीच कोई भिन्नता न रह गई। समवयस के निःसंकोच वार्तालाप द्वारा इस तरह उनका गंभीर परिचय, प्रीति, सख्यता तथा भाव का आदान-प्रदान हुआ।

अकस्मात् एक कुत्ते के प्राणपण-करुण चीत्कार ने बाधा उपस्थित की। मालूम होता है बेचारा आहार संग्रह करने के लिए लाइन की ओर उतरा था, वहीं पर एक चलती हुई मालगाड़ी के चक्के से धक्का लग गया। जब कुत्ता चीत्कार करते हुए एक ओर के प्लैटफार्म पर चढ़ा, तो शान्ति ने देखा कि वह एक पैर उठाये विकृत आर्त्तनाद करते हुए लँगड़ाते-लगड़ाते भाग रहा है, उसके उस पैर से झर-झर रक्त बह रहा है।

भयभीत, विवर्ण तथा आहत मुख से उसने बदरी की ओर देखा। उस समय उसका सर्वाङ्ग थर-थर काँप रहा था। किन्तु इतनी बड़ी दुर्घटना होने पर भी माल-गाड़ी की गति थोड़ी भी क्षुण्ण न हुई, पहले की तरह मन्थर गति से वह अपने रास्ते पर चलने लगी।

बदरी उसकी ओर देखकर थोड़ा हँसा। बोला--ऐसा तो बराबर होता है। कितने कुत्ते इस तरह...उस दिन एक कुली पार होते समय--बस, देखते-देखते उसका एक पैर चक्के के नीचे पड़ गया।

शान्ति चुप रही। कहीं दूर जाकर रह-रहकर उस समय भी कुत्ता आर्त्तनाद कर रहा था, वह उसी ओर देखती रही। उसने सोचा, निष्ठुर पृथिवी! एक असहाय प्राणी चिर जीवन के लिए पंगु हो गया, किसी ने उसकी ओर घूमकर देखा तक नहीं! जो प्रतिवाद नहीं कर सकता, जिसकी वेदना की कोई भाषा नहीं; उसका जीवन क्या इतना तुच्छ, इतना अनादरणीय है?

शान्ति की दोनों आँखों में आँसू भर आये। यह दण्ड मानो उसी के लिए था, यह आघात मानो उसकी छाती पर लगा! जो दूसरों का दुःख अनुभव करता है, वह बराबर दुःखी रहता है। शान्ति जीवन में कभी सुखी न हो सकेगी!

बदरी ने कहा--और भी हैं, तुम तो जानतीं नहीं, देखती क्या हो? हम लोग उधर घूमकर देखते भी नहीं!

ओढ़नी से आँख पोंछकर सीधी होकर बैठते ही बदरी उसे समझाने लगा, इस दुनिया में कितनी और कितने ही करुण दृश्य प्रतिदिन देखे जाते हैं। वे सब इससे और भी निष्ठुर, और भी भीषण, और भी मर्मान्तक! बदरी ने हँसकर कहा--तुम्हारी तरह कमजोर दिल होने से संसार में हमारा रहन नहीं होता।

बदरी, मालूम होता है, अपनी विद्या-बुद्धि के अनुसार और कुछ व्याख्यान देने की चेष्टा कर रहा था, सहसा चाचाजी को शान्ति के पास आकर खड़े होते देख उसकी बात बन्द हो गई।

चचाजी शान्ति का हाथ पकड़कर खींचते हुए बोले--अब गाड़ी आ रही है! जल्दी कपड़ा बदलो। सोहन सिंह को उठा दो।

शान्ति जाकर सोहन सिंह को झटका दे जगा, कपड़ा ले स्नान-घर में घुसी।

वह रोई है, इसे लेकर उसकी लज्जा की सीमा न रही। लड़का निश्चय ही उसकी निन्दा करेगा !

चाचाजी बोले—फिर तू मेरी लड़की के पास अपनी चीजें बेचने आया था ? बदमाश !

बदरी बोला—गरीब आदमी हूँ सरदारजी, यही तो मेरा रोजगार है ! यह कह अपना बक्स ले वह कुछ दूर चला गया। चाचाजी ने मानो उसे बतला दिया, शान्ति और उसकी अवस्था में कितना अन्तर है, कितनी देर के लिए वह कृपा का पात्र हो सकता है !

उस समय रात शेष हो रही थी, जब फिर सब लोग हाथ में अपना-अपना माल असबाब सँभाले हुए प्लेटफार्म के ऊपर आये। दूर से शान्ति को देख बदरी अवाक् रह गया। इस बीच उसने कपड़े बदले हैं। इस बार उसके परिधान में बैंगनी मखमल के ऊपर सुनहली जरी का सुन्दर काम किया हुआ पायजामा, शरीर पर गरद का कुरता, माथे पर नीले रंग की ओढ़नी और पैर में जरी का जूता। शान्ति ने एक बार चारों ओर देखा। बदरी पर उसकी नज़र न पड़ी। पड़े ही क्यों ! उसके साथ भारी व्यवधान जो है ! बदरी ने सोचा, इस महीयसी के संग थोड़ी देर पहले की उसकी अनाधिकार घनिष्ठता का कोई अर्थ है ? उसके अख्यात नगण्य जीवन में शान्ति केवल भिक्षा की तरह दे गई, साधारण मैत्री का यत्सामान्य गौरव, यत्किंचित् सौभाग्य ! वह स्त्री उसके शरीर पर तुच्छता तथा क्षुद्रता की लज्जा का जो लेपन कर गई, वह उसे किस तरह छिपायेगा ? बदरी दरिद्र था सही, किन्तु वह अपनी स्पर्द्धा को दूर न कर सका। राजकन्या के साथ भेंड़ चरानेवाले लड़के की दोस्ती ? यह मिथ्या है, असम्भव है, यह गप्प है, जिस पर कोई विश्वास न करेगा !

लकड़ी का पुल पार कर वह उस ओर चला गया। छोटी लाइन की गाड़ी अभी छूटेगी। बदरी केवल घूमने लगा, यात्रियों से विनय कर खिलौना और मनिहारी बिक्री करने में उसे और रुचि न रह गई। थोड़ी देर के बाद गाड़ी उसकी आँखों के सामने से धीरे-धीरे स्टेशन छोड़ चली गई।

वह एक स्थान पर आ बैठा। उसके मुख की भाषा मानो खो गई है ! उसमें स्फूर्ति न रही, वह क्लान्त हो गया। वह, हो सकता है, यह फेरीवाले का

कायर काम और अधिक दिन नहीं कर सकेगा। बदरी को मालूम हुआ, यहीं पर थोड़ी देर आँखें बन्द कर सो लेने पर ही उसे चैन मिलेगा।

उसी समय उस ओर की लाइन पर डाकगाड़ी आ गई।

केवल तीन मिनट ठहरेगी। उठो बदरी, समय नहीं! तुम्हारे इस अकारण अवसाद का मूल्य ही क्या! कौन समझेगा एक पलक में किसका जीवन किस समय व्यर्थ हो गया! अपने ग्वाले पिता के निर्दय शासन का स्मरण कर उठ खड़े हो! किसने कहा कि तुम क्लान्त हो?

बदरी झाँपी लेकर फिर जल्दी-जल्दी दौड़ा।

लकड़ी का पुल पकड़े वह द्रुतवेग से उतरा आ रहा था—बस, उसका बक्स एक ओर एकदम झुक गया! हड़्-हड़् कर उसकी सब मनिहारी सीढ़ी के ऊपर छितरा गई। जो पीछे से आ रहे थे उनमें से कोई सब को रौंद गया, किसी ने पैर से ठुकरा दिया, किसी ने गाली दी, किसी ने कहा—आह! उन्हें एक-एक कर चुन जब उसने सबको एकत्र किया तो घण्टा पड़ गया। फीते को गले में ठीक से लगाकर वह फिर नीचे उतरा। गाड़ी के पास आते ही एक आदमी ने उसे खड़ा कर एक पैकेट सिगरेट खरीदा। उसके बाद एक दियासलाई ली।

'बंगाली बाबू, जल्दी पैसा दीजिये!'

'अरे ठहरो, एकदम लाट साहेब।'—कह बाबू ने पैकेट खोल एक सिगरेट निकाल दियासलाई जला उसे धराकर बोले—कितना?

'तेरह पैसे!'

'भागो, सब तो ग्यारह पैसे में देते हैं और तू...सब मिला तीन आने दूँगा।'

'अच्छा वही दीजिये।'

बाबू ने एक रुपया निकाला। मालूम होता है रुपया भँजाना ही उनका उद्देश्य था। बदरी को फिर थैली निकाल रुपए का खुदरा गिन-गिनकर देना पड़ा। एक चवन्नी को खराब बतलाकर बाबू ने चार इकन्नियाँ लीं।

फिर कुछ कदम आगे बढ़ते ही एक और आदमी ने उसे रोककर पूछा—एनामेल के चम्मच का दाम क्या?

शान्ति जो उसे हाथ के इशारे से दूसरी गाड़ी से बुला रही थी, वह बदरी की नजर से न बच सकी। उस ओर एक बार देख निःश्वास रोककर वह बोला—दो आने, लीजियेगा ?

'खूब टिकाऊ होगा तो छः पैसे मिलेंगे।'

सीटी बज गई है। बाबू के पास चम्मच रखकर ही वह शांति की ओर दौड़ा, पैसे लेने का समय न मिला। गाड़ी खुल गई है।

किन्तु शान्ति के पास वह बहुत देर कर पहुँचा। और उसे बोलना ही क्या था ! पास पहुँचते ही विव्रत तथा विपन्न हो शान्ति ने हाथ बढ़ाकर काँच की पुतली को उसके बक्स के बीच फेंक दी। उसके बाद हँसकर बोली—चुराई थी।

बक्स को रास्ते के ऊपर रख न जाने क्यों बदरी दौड़ने लगा। गाड़ी के साथ-साथ—भोले बच्चे की तरह, अर्वाचीन की तरह। शांति गर्दन बाहर कर बोली—अब तक कहाँ थे ?...हाँ, हाँ, गिर पड़ोगे ! रुको, रुको...पागल की तरह...

गाड़ी तेज चलने लगी। विदेशिनी स्त्री ने खिड़की से आधी देह बाहर कर हँसते हुए अपना सिर छू बिदाई का अभिवादन किया ! शीघ्र ही बीच का व्यवधान दीर्घ हो गया।

लौटकर बदरी ने पुतली की ओर एक बार देखा। शान्ति के हाथ में पकड़े रहने से वह उस समय भी आर्द्र तथा उष्ण थी। मन-ही-मन उसने प्रतिज्ञा की, इसे वह और न बेचेगा, अपने फूस के घर के बाँस के बन्धन में बाँधकर रख देगा। कोई जिसमें जान न सके कि यह पुतली उसके जीवन की सबसे बड़ी व्यर्थता का चिह्न है !

गाड़ी जिस पथ में अदृश्य हो गई, उस ओर बहुत दूर तक उसने एक बार देखा। कुछ दीख न पड़ा ; केवल उस पथ की दोनों ओर बबूल के घने जंगल की सीमा पर प्रातःकालीन आकाश थोड़ा-थोड़ा लाल हो रहा था।

नये दिन फेरी करने के लिए बदरी ने झुनझुना उठाकर बजाने की कोशिश की ; परन्तु केवल उसका हाथ भर कँपा, झुनझुना और नहीं बजा।

डेन्टोलॉजी

नन्दगोपाल सेन-गुप्त

[सन् १९०९ ई० में मुर्शिदाबाद जिले के इस्लामपुर नामक गाँव में अपनी ननिहाल में नन्दगोपाल सेन का जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम श्रीयुक्त वसन्तकुमार सेन-गुप्त था। मैट्रिकुलेशन परीक्षा में इन्होंने बँगला भाषा में प्रथम स्थान पाया था और इसके लिए कलकत्ता विश्वविद्यालय से स्वर्ण-पदक भी प्राप्त किया था। बी० ए० परीक्षा में इन्होंने अंग्रेजी में आनर्स प्राप्त किया था। छात्रावस्था में इन्हें दरिद्रता के कारण दूसरों के आश्रय में रहना पड़ा था। इन्होंने अनेक प्रकार के कष्ट और दुःख भोगकर शिक्षा प्राप्त की थी। पहले ये 'आनन्द बाजार पत्रिका' के सहकारी सम्पादक का काम करते थे : इसके बाद कुछ दिनों तक कलकत्ते के एक स्कूल में अध्यापक का काम भी करते थे। आजकल ये विश्व-भारती में अध्यापक का काम करते हैं और रवीन्द्रनाथ के ग्रन्थों का सम्पादन भी करते हैं। काव्य, नाटक, गल्प, उपन्यास, साहित्य की आलोचना आदि सभी प्रकार की रचनाओं में नन्दगोपाल ने ख्याति प्राप्त की है। इनकी अँग्रेजी रचनाओं का भी विशेष आदर हुआ है। किन्तु इनका नाम सबसे अधिक कवि और समालोचक के रूप में ही प्रसिद्ध है।

बँगला साहित्य में हास्य-रस की कहानियों का नितान्त अभाव है। कहा जा सकता है कि परशुराम के आविर्भाव से पहले सुरुचि-सम्पन्न हास्य-रस बँगला में बिलकुल था ही नहीं। इसके बाद जिन लोगों ने हास्य-रस की कहानियाँ लिखी हैं, उनमें से नन्दगोपालजी ने ही सबसे अधिक ख्याति पाई है। इनका हास्य जिस प्रकार एक ओर भावों की दृष्टि से बहुत ही गूढ़ होता है, उसी प्रकार दूसरी ओर वह अत्यन्त सुष्ट भी होता है। ये कभी व्यक्ति-आक्रमण के द्वारा अथवा असूया प्रकट करके किसी को नहीं हँसाते। इनके हास्य में यह विशेषता है कि जिन लोगों के सम्बन्ध में ये हँसी की कोई बात कहते हैं, वे लोग स्वयं भी वे बातें सुनकर हँस सकते हैं। इनकी बहुदर्शिता और विद्वत्ता इनकी कहानियों को भारा-क्रान्त नहीं करती। इनकी प्रत्येक बात में इनकी बहुदर्शिता और विद्वत्ता की छाप तो अवश्य पाई जाती है, लेकिन फिर भी अन्त में इनकी सरल नैर्व्यक्तिक रहस्य-प्रियता ही विजयी होती है। यद्यपि इनकी एक-दो कहानियाँ कुछ अश्लील भी हो

गई हैं लेकिन फिर भी उनमें हास्य-रस की जो विशेषता दिखाई देती है, वह उपेक्षा के योग्य नहीं है। किन्तु इनकी हास्य-रसवाली कहानियों की अपेक्षा गम्भीर कहानियाँ ही अधिक प्रसिद्ध हैं। 'डेन्टोलॉजी' नामक कहानी पाठकों को स्टीफेन लीकॉक अथवा स्टैशी एमोनियर की कहानियों की रचना-शैली का स्मरण करा देगी। सुना जाता है कि इस कहानी में जो विषय है, वह एक सच्ची घटना से लिया गया है।—प्रधान संपादक।]

डेन्टोलॉजी

बीमारी क्या थी, निश्चित न हो सकी। परन्तु मित्रों की राय तथा उद्वेग के उपद्रव से बंकू की अवस्था दिन-प्रति-दिन खराब होती गई। पेट, छाती और शिर की यथारीति परीक्षा हुई—कहीं कोई दोष न पाया गया। नया चश्मा लिया गया, फिर भी कोई लाभ न हुआ। किन्तु पुराने घी की छाती पर मालिश, बराबर मोजा पहने रहना, दोनों वक्त भास्कर-लवण सेवन, स्नान बंद और नाना प्रकार की रोगी-जनोचित व्यवस्था बराबर बनी रही। अन्त में बंकू ने धैर्य छोड़ दिया—नहीं, मालूम होता है अब और जीवन की आशा नहीं। अब केवल तारकेश्वर में बलि चढ़ाना ही बाकी बचा है और उसके बाद निश्चिन्त होकर मृत्यु की प्रतीक्षा।

ठीक उसी समय दैवयोग से उसके हाथ में एक ठोंगा पड़ा जो स्वास्थ्य-विषयक किसी पत्रिका के एक पन्ने का बना हुआ था। उसमें लिखा थाः—'दाँतों के विषय में बंगाली जाति के भीतर एकान्त उपेक्षा पाई जाती है। किन्तु दाँत ही जीवन-धारण का आदि उपाय हैं। दाँतों के अलग-अलग हो जाने से जो उनमें गढ़े हो जाते हैं, उनमें दूषित पदार्थ के एकत्रित होने से पायरिया नाम की भयंकर बीमारी पैदा होती है।' और उसके थोड़ा आगे,—'बहुधा बाहर से कोई बीमारी नहीं मालूम पड़ती, पर शरीर का भीतर-ही-भीतर क्षय आरम्भ हो जाता है—किसी काम में मन नहीं लगता, चित्त बराबर अवसन्न-सा रहा करता है।' बंकू की अवस्था भी तो ठीक ऐसी ही है! तब दाँतों में ही कोई खराबी तो नहीं है! दाँतों की परीक्षा अब तक करवाई भी नहीं गई है।

रसिक ने कहा—हाँ, वैसा हो सकता है, भाई! देखो न पछाहाँ बेवकूफों को, उनके दाँत में कितना जोर रहता है और उनका शरीर भी वैसा ही होता है!

बंकू को इस विषय में अब और किञ्चित्मात्र भी संशय न रह गया—उसके दाँतों में ही कहीं कोई खराबी है—नहीं तो वह दिन-दिन क्यों सूखता जा रहा है? ठीक हुआ कि उसी दिन ऑफिस से लौटते हुए वह प्रसिद्ध डेन्टिस्ट डाक्टर फैयाज

के साथ मुलाकात करेगा। रसिक ने कहा—फैयाज अमेरिका से लौटे हुए और दाँतों के विषय में स्पेशलिस्ट हैं। इसके सिवा वे बड़े सज्जन आदमी हैं; उनका चार्ज भी मॉडरेट है। रसिक साथ में जा सकता था; पर सन्ध्या समय उसे ट्यूशन के लिए जाना था।

बंकू जिस समय फैयाज़ की डिस्पेन्सरी में पहुँचा, उस समय सन्ध्या हो चली थी। एक नौजवान असिस्टेन्ट कुर्सी पर बैठे कई हिसाब-पत्रों को देख रहा था और डाक्टर साहब एक आराम-कुर्सी पर लेटे हुए एक उपन्यास पढ़ रहे थे। दो-एक स्त्री-पुरुष चुपचाप बैठे थे। दरवाजे पर से शो-केस में रखे कई जबड़े, दाँत आदि दीख पड़ते थे और भीतर की दीवार पर भी उन्हीं के अनुरूप कई तसवीरें थीं; किन्तु सबसे मजेदार था साइनबोर्ड!

दरवाजे पर से झाँकते ही असिस्टेन्ट ने कहा—आइये, भीतर आइये!

बंकू ने भीतर जाते ही नमस्कार किया। उसके पीछे की ओर से भारी गले की एक आवाज आई—'इस कुर्सी पर बैठिये!' बंकू ने चौंककर पीछे की ओर देखा—कोट-पैन्टधारी एक पुरुष-पुंगव को। मैं समझता हूँ ये ही हैं स्वनामधन्य डाक्टर ए० फैयाज डी० पी० टी० एम०-एस०। और एक बार नमस्कार कर बंकू गद् से बैठ गया। इसी बीच रोशनी जलाई गई।

असिस्टेन्ट ने कहा—कहिये।

'जल्दी-जल्दी मुझे ही उनसे कहने की इच्छा है। रसिक ने कहा है कि उनके मुकाबले कोई डेन्टिस्ट नहीं, तभी तो बेलियाघाटा से यहाँ इतनी दूर श्याम-बाजार आया हूँ, साहब।'

'मुझसे कहिये तो मैं उन्हें समझा दूँगा।'

'क्यों, क्या मेरे साथ भेंट करने से उनकी इज्जत में बट्टा लगेगा?'

डाक्टर ने हुंकार किया—आइये, यहाँ आइये।

बंकू अस्त-व्यस्त हालत में ही उनके सामने जाकर बोला—देखिये, यह क्या हुआ है, समझ में नहीं आता—शरीर पुष्ट नहीं हो रहा है और मन भी उदास रहता है।

'किन्तु यहाँ तो केवल दाँतों की चिकित्सा होती है—वह चाहे स्टोन हो, कैविटी हो, पायरिया हो, पैच हो, गमसोर हो—शरीर का वा मन का...!'

'यह जानता हूँ। पहले मेरी बात सुनिये। तरह-तरह का ट्रीटमेन्ट ट्राई किया, पर कोई फल न हुआ। उसके बाद किताब में दाँत के ऊपर एक आर्टिकिल पढ़ा, सोचा उसे एक-बार दिखलायें—यदि उससे कोई लाभ हो।'

डाक्टर सीधे होकर बैठे। उसके बाद बंकू की ओर वक्र दृष्टि निक्षेप करते हुए बोले—एक्सक्यूज़ मी, आप क्या करते हैं ?

'मैं ? मैं टेंगरा स्लॉटर हाउस का किरानी...!'

'आई सी। तो आप किरानीगिरी करते हुए भी डेन्टोलॉजी लेकर कल्चर करने का समय पाते हैं। बड़ी खुशी की बात है। देखिये, दाँत की कद्र नहीं समझने के कारण ही यह देश इतना बैकवार्ड है। अमेरिका में नाइन्टी-एट परसेन्ट स्त्रियाँ दाँत तुड़वाकर फौल्स टीथ लगवाती हैं—तभी उनको चूमने के लिए लोग इतने व्यग्र रहते हैं और हमारे देश की लड़कियाँ! वे कपड़े का आँचल देकर...! इसीलिए आजकल भद्र पुरुषों के लड़के विवाह करना नहीं चाहते। मानो जाति ही मर गई—फिर भी दाँत का मूल्य नहीं समझा गया।'

'ठीक कहते हैं! इस देश की स्त्रियों के मुख से बड़ी बदबू...राम!'

'केवल गंध ? इससे नाना प्रकार के रोग—अर्श, भगन्दर, सिफ़लिस, कॉलरा, ट्यूबरक्यूलोसिस तक हो जाते हैं। लोग बड़े-बड़े डाक्टर बुलाते हैं। वे क्या करेंगे ? उसका मूल है दाँत.. उसी की चिकित्सा होनी चाहिये। पैर में बात और माथे मे मालिश ? फूल्स! जनाब विज़डम टीथ निकालने से फ़िफ्टी-टू परसेन्ट पागल अच्छे हो गये हैं। दाँतों के उपकार के वर्णन का अन्त है भला ? मैंने इस विषय में एक पेपर 'शरीर-रक्षक' पत्र में लिखा है।'

शरीर-रक्षक ? उसके ही एक पन्ने का ठोंगा एक पैसे के लाई से भरा हुआ बंकू के हाथ में पड़ा था और वही दाँतवाला लेख। निश्चय ही वह पेपर इन्हीं का था! ईश्वर का क्या योगायोग है—जय बाबा तारकनाथ की! इस बार बंकू अवश्य ही रोग-मुक्त होगा। किन्तु क्या सचमुच दाँत उखाड़ ही देगा ?

'तब क्या मेरे दाँत भी उखाड़ने होंगे ?'

'गुड हेवन्स! ठहरिये, पहले एकजामिन कर देखें। और अगर उखाड़ना ही पड़े तो भय क्या ? यह देखिये न, मैंने स्वयं दोनों ओर के दाँतों को तुड़वाकर बनावटी दाँत लगा रखे हैं—मेरे असिस्टेन्ट मि० समद भी.. दिखलाओ तो तुम

भी।' बोलते ही धड़ से डाक्टर साहब ने दोनो तरफ के दाँत निकालकर बंकू के सामने रख दिये, समद ने भी मालिक का अनुकरण किया।

'अपने कर के दूसरों को सिखाना चाहिये, क्या कहते हैं ?'

बंकू की अवस्था उस समय सम्मोहित-सी हो रही थी; वह स्तब्ध हो सब देखता-सुनता रहा। डाक्टर साहब एकबार 'आता हूँ' कह पर्दा हटाकर बगल के कमरे में गये। बंकू बैठे-बैठे तरह-तरह की बातें सोच रहा है। हठात् 'ढक' की आवाज हुई। पीछे घूमकर बंकू देखता है कि तुरन्त कब्र से उठकर आये हुए मुर्दे की शकल का एक लिक्-लिक् आदमी दरवाज़े से उँगली हिलाकर ताकते हुए पुकारता है—बंकू के उठते ही 'साहब, जल्दी भागिये, भागिये' कहते उसने दौड़ना आरम्भ कर दिया। भागिये, भागिये! बंकू ने एक बार पीछे फिरकर देखा, उसके बाद न जाने क्या इच्छा हुई—उसने सीधा दौड़ना आरम्भ कर दिया। वह आदमी आगे-आगे और बंकू पीछे-पीछे। प्रायः आधे मील तक इसी तरह दौड़ने के बाद वह आदमी हेदोपार्क में घुसा, बंकू भी पीछे-पीछे घुसा।

रात हो गई है—दो चार स्त्री-पुरुष इधर-उधर चहलकदमी कर रहे हैं—दोनों ही घास के ऊपर बैठ हाँफने लगे।

बंकू बोला--क्या मामला है भाई!

'ठहरिये, रिकाब पर पैर रखे हुए हैं न ? प्राण बचे यही बहुत है।'

'काबुली मटर चाहिये, गरम-गरम ?'

'साहब खरीदिये न दो पैसे का—गला तीता हो गया है!'

बंकू ने खरीदा। आदमी आँख मूँदकर आलसी भाव से एक-एक मुट्ठी मटर मुंह में डालने लगा। बंकू के उद्वेग की ओर उसका अणुमात्र भी ख्याल न रहा।

'क्यों ? बोलिये न! आप भी अच्छे आदमी हैं।'

'ओह, एकदम भूल ही गया। हाँ, आप वहाँ गये क्यों थे ?'

'दाँत दिखलाने।'

'क्यों, क्या आपके घर में कोई नौकर-चाकर नहीं है ? अन्त में स्त्री तो है—उससे दाँत उखड़वा सकते थे। उसके पास क्यो गये थे ? वह भारी डाकू है, साहब!'—इतना कहते ही आदमी फूट-फूटकर रोने लगा। बात क्या है ?

'आप रोते क्यों हैं ?'

'क्यों न रोऊँ, आप क्या कहते हैं ? ज्वलज्यान्त बहु—और, क्या मीठी हँसी ! ओ हो-हो !'

बंकू बिलकुल स्तब्ध हो गया। किसी बदमाश या पागल के पल्ले पड़ा हुआ समझ वह घबड़ाकर भागने का रास्ता खोज रहा है। किन्तु डिस्पेन्सरी से यह काण्ड करने के बाद से अभी तक उसका शरीर काँप रहा है अब और दौड़ना केवल कठिन नहीं—असम्भव है। वह चुप बैठा रहा।

आदमी बोला—विवाह के बाद मैं बिलकुल हृष्ट-कट्टा था साहब। एक बार ही 'कपोत कपोती यथा उच्च-वृक्ष चूड़े'—खूब प्रगाढ़ प्रेम था, समझे न !'

'किन्तु दाँतों से उससे क्या सम्बन्ध ?'

'ठहरिये, दाँत ही उसका काल हुआ साहब ! ओ हो-हो !'

'देखिये मेरा शरीर अस्वस्थ है ; रात हो गयी है !'

आदमी जरा भी कुण्ठित न हुआ। वह बोला—सुनिये साहब, उसके बाद श्वसुर-साले बहू को दुर्गा-पूजा के समय ले गये—प्रेगनेन्ट थी न—जाने के समय मेरा गला पकड़कर उसकी रुलाई ! ओः...?

'ओः असली बात क्या है ? कहिये न !'

आदमी गुस्सा हो गया।

'साहब, आप कैसे आदमी हैं ? एक आदमी के सर्वनाश की कहानी सुन रहे हैं। थोड़ी देरी ही हुई तो क्या। मालूम होता है आपकी स्त्री है...!'

बाध्य होकर बंकू ने कहा—कहिये, कहिये...!

दो महीने के बाद ससुराल जाकर देखता हूँ यही रोग...आदर के साथ चूमा लेने गया ! उस शैतान ने मुँह फेर लिया ! इस धक्के का एक बार विचार कीजिये, इतना प्रेम और यह हाल ! गरम होकर बोला—बदमाश, ठहरो मैं तुम्हें सिखाता हूँ—कहकर घर चला आया। उसके सात दिन बाद ही...ओः हो-हो।—वह भद्र पुरुष और फूटकर रोने लगा।

'हुआ क्या ? डिलिवरी में...!'

'अरे नहीं साहब ! दाँत में क्रेटर हुआ था—इसीलिए देवीजी ने चुम्बन न लेने दिया। इसी हरामी के पास चिकित्सा के लिए गई। इसने ऊपरी जबड़े के

दाहिनी ओर के दाँत तोड़ने के बदले नीचे की बाईं ओर के दाँत निकाल दिये। धनुष्टङ्कार हो गया ! उसके बाद फिर किसकी ताकत जो बचाये ? क्या कहते हैं ?'

'तो आपने केस क्यों नहीं किया ?'

'जरूरत क्या ? मैं सवेरे से शाम तक रास्ते में खड़े होकर रोगियों को भगाता हूँ... यह क्या यथेष्ट दण्ड नहीं ?'

'ओह !' बंकू अब भागकर ही बच सकता है ।

एक-ब-एक उसे मालूम हुआ कि उसकी सारी बीमारी आश्चर्यरूप से दूर हो गई है। वह उठ खड़ा हुआ।

आदमी बोला--जाते हैं ! साहब, जो हो, मैंने आपका एक उपकार किया--तो आप दो आने पैसे दे सकते हैं ?

इसी के लिए इतना आयोजन ? बंकू इस बार हा-हा कर हँस उठा !

भ्रमर

बुद्धदेव बसु

[बुद्धदेव वसु का जन्म-स्थान ढाका है। वहाँ के विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा दी थी और उस परीक्षा में ये सर्व-प्रथम हुए थे। तब से ये कलकत्ते आकर रहने लगे और साहित्य का अनुशीलन करने लगे। छात्रावस्था में ही ये 'प्रगति' नामक मासिक पत्रिका का सम्पादन करते थे। इसी पत्रिका में इनकी आरम्भिक अवस्था की कविताएँ, प्रबन्ध और कहानियाँ आदि प्रकाशित हुई थीं। साहित्यिक जीवन के आरम्भ में बुद्धदेव कवि के रूप में ही प्रसिद्ध हुए थे। इसके बाद ये कहानियाँ और उपन्यास भी लिखने लगे। यद्यपि एक संप्रदाय में ये बहुत कुछ प्रिय हुए थे, लेकिन फिर भी कहानियाँ लिखने के सम्बन्ध में ये अपने विशेष कृतित्व का परिचय नहीं दे सके थे। आज-कल ये कलकत्ते के रिपन कालिज में अध्यापक हैं। इन्होंने गद्य और पद्य में अनेक ग्रन्थ लिखे हैं। ये अँगरेजी भी बहुत अच्छी लिखते हैं।

बुद्धदेव की कहानियों का मुख्य दोष यह है कि उनमें जो पात्र और पात्रियाँ आविर्भूत होती हैं, वे वास्तविक जगत् की नहीं होतीं। जिस परिवेश में वे सब चलते-फिरते हैं, वह भी सत्य नहीं होता। ये वैदेशिक साहित्य में जिन नर-नारियों को देखते हैं, जो घटनाएँ और समस्याएँ देखते हैं, उन्हीं को ये बँगला में हू-बहू ले आते हैं। बंगाली समाज, संस्कृति और जीवन के साथ उनकी संगति नहीं बैठती। वे सब अवास्तविक होते हैं और बहिरांगिक भाव में ही रह जाते हैं। रक्त-मांस के मनुष्य रवीन्द्र साहित्य में भी अधिक नहीं दिखाई देते। लेकिन फिर भी उसमें इनके स्थान पर एक ऐसे भावादर्शमय मनुष्य का साक्षात् होता है, जिसे कल्पना में स्वयं ही गढ़ लिया जा सकता है। दोष और गुण तथा शक्ति और दुर्बलता से युक्त जिन मनुष्यों के योग से हमारा नित्य का जीवन बनता है, उनसे यद्यपि रवीन्द्रनाथ के पात्र स्वतन्त्र होते हैं, लेकिन फिर भी वे नितान्त काल्पनिक और मिथ्या नहीं जान पड़ते। बुद्धदेव की कहानियों का संसार नितान्त मिथ्या होता है। वह कल्पना-प्रसूत भी नहीं होता और अविज्ञाता से उत्पन्न भी नहीं होता। वह केवल अनुकरणगत होता है। तिस पर भी बुद्धदेव की भाषा और शैली अँगरेजी के अनुकरण के कारण अत्यन्त विकृत और अस्वच्छ होती

है। इन सब इच्छाकृत नवीनताओं के आधिक्य के कारण बंगाल में इनके सम्बन्ध में प्रायः बहुत कुछ टीका-टिप्पणी भी होती रहती है। वास्तव में ये कोई विशिष्ट श्रेणी के गल्प-लेखक नहीं हैं। लेकिन इसमें सन्देह नहीं कि इनकी 'घरे ते भ्रमर एलो' नामक कहानी अनेक दृष्टियों से विशेष उल्लेख के योग्य है। फिर भी बँगला-साहित्य की आधुनिक धारा का परिचय प्राप्त करते समय इन्हें छोड़ा नहीं जा सकता।]

भ्रमर

अन्दर से भ्रमर आई और आकर कहने लगी—अजी सुनते हो, जग्गू बाबू के बाजार में गंगाजी की बड़ी-बड़ी हिलसा मछलियाँ आई हैं। जाओ न, जाकर एक मछली ले आओ। और क्या; हिलसा मछलियों के दिन तो अब बीते जा रहे हैं।

उसका इस तरह बोलना ठीक गुञ्जन की तरह नहीं था। आत्मा के ऊपर वह आकाश की ओस की तरह आकर नहीं पड़ता था। उसके एक-एक स्वर से आश्विन का नील प्रातःकाल विह्वल नहीं हो उठता था।

मैंने सिर उठाकर कहा—प्रिये, ज़रा आँख उठाकर देखो; तुम्हारे नेत्रों की तरह आज आकाश नील है। स्वच्छ मेघ बढ़े चले जा रहे हैं, ठीक उसी तरह, जिस तरह मेरे मन के ऊपर से होकर तुम्हारे स्वप्न जाते हैं। और यह धूप निकली है सोने में सुगन्ध होकर। मैं सोचता हूँ कि कहीं यह तुम्हारा प्रेम ही तो सारे विश्व में नहीं बिखर गया है?

मैं इतना ही कहकर न रुक जाता। नहीं, मैं निश्चयपूर्वक जानता हूँ कि अभी मैं और भी कुछ कहता। लेकिन सहसा भ्रमर का एक हाथ मेरे मुख के ऊपर आ पड़ा। उस हाथ में अनेक प्रकार के मसालों की एक मिली हुई गन्ध थी, जो अचानक रसोई-घर से इकट्ठी होकर आ घुसी थी मेरे दिमाग में।—'बस बस, रहने दो। तुम्हारी यह भलमनसत अच्छी नहीं लगती।'

भ्रमर का हाथ अपने मुख के ऊपर से हटाकर और अपने हाथ में लेकर मैंने कहा—प्रिये, ज़रा एक बार देखो। इस खिड़की के रास्ते अपने दोनों नेत्रों को एक बार भ्रमर की तरह बाहर भेजो। स्वर्ग आज खुलकर नेत्रों के सामने आ गया है। उर्वशी का झलमला आँचल आज हवा में हिल रहा है। ऐसा प्रातःकाल क्या रसोई-घर में बीतेगा? हिलसा मछली के फेर में?

अपना हाथ छुड़ाकर भ्रमर कुछ मुस्कराई। यह बात माननी ही होगी कि उसकी प्रकृति में सहिष्णुता है। कम-से-कम मेरे सम्बन्ध में तो अवश्य ही है।

मेरी इस तरह की छेड़-छाड़ वह बरदाश्त करती है बहुत हँसी-खुशी से—ठीक उसी तरह, जिस तरह हम लोग छोटे बच्चों की सब तरह की बातें बरदाश्त करते हैं ! उसमें होती है कुछ करुणा और साथ ही स्नेह। प्रतिवाद करने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि सुनने की ही आवश्यकता नहीं। ईश्वर को धन्यवाद है भ्रमर के लिए।

भ्रमर ने अपनी अध-मैली साड़ी का गिरा हुआ आँचल कमर में लपेटकर कहा—अच्छा लो उठो। नौ तो बज गये। अभी थोड़ी देर में जल्दी मचाने लगोगे।

'जल्दी ? किस बात के लिए ?'

भ्रमर ने मेरी ओर एक तीव्र कटाक्ष करके अपना होंठ कुछ टेढ़ा किया।

'पागल कहीं की ! क्या तुम यह समझ रही हो कि आज भी स्कूल जाना है ?'

'नहीं, भला आज तुम स्कूल जाओगे ! तुम तो रोज ही एक बार यह बात कहा करते हो। लेकिन जहाँ दस बजने को होता है, तो बस तौलिया कहाँ है ? साबुन कहाँ है ? भात कहाँ है ? जूता कहाँ है ? पान कहाँ है ? एक आफ़त खड़ी हो जाती है। अगर समय रहते धीरे-धीरे नहा-खा लो तो क्या हो ? मैं अकेली किधर-किधर सँभाल सकती हूँ ! मुझे दिक करना तुम्हें बहुत अच्छा लगता है; क्यों ?'

मैं ठंढी साँस लेकर चुप रह गया। हाय, कैसे दुःख की बात है कि मेरी स्त्री तक इस बात का विश्वास नहीं करती कि एक दिन स्कूल न जाने की शक्ति भी मुझमें है। अब सब कुछ नष्ट होने में देर ही कितनी है ?

भ्रमर ने फिर कहना आरम्भ किया—जरा बाजार चले जाओ न। दो मिनट का काम है। छोटी-सी और चिपटी-सी देखकर मछली लाना; समझ गये ? बरफ में रखी हुई मछली खाने से तुम्हारी ही तबीयत खराब होती है। अगर खुद देखकर ताजी मछली नहीं लाओगे तो और क्या होगा ?

ठीक ही तो है। और क्या होगा ? किस तरह ताजी मछली का संग्रह किया जा सकता है, यह समस्या भी जीवन में कुछ मामूली नहीं है। मैं उठकर खड़ा हो गया।

मुझे ड्रॉअर में कलम रखते देखकर भ्रमर ने पूछा—क्या कुछ लिख रहे थे ?

मैंने जल्दी से पैड दबाकर कहा—नहीं, कुछ भी नहीं !

'देखूँ, देखूँ ज़रा।'

यह बात ठीक उसी तरह कही गई थी, जिस तरह बच्चों से कहा जाता है, क्यों जी, एक लेमनजूस लोगे ? मैं बाजार जाने के लिए राजी हो गया था और इसीलिए पुरस्कार-स्वरूप वह मेरी लिखी कविता के सम्बन्ध में कुछ प्रशंसात्मक बातें कहकर मुझे उत्साहित करना चाहती थी। उसने जल्दी से कागज़ खींच लिया। मैंने एक गीत की पहली चार पंक्तियाँ लिखी थीं। अब और कितने दिनों में और किस तरह बाकी दस पंक्तियाँ लिखूँगा, यह पूरी तरह से ईश्वर की दया पर ही निर्भर करता है।

लेकिन सचमुच मेरी लिखी हुई कविताओं के साथ भ्रमर को, जिसे सिम्पैथी (सहानुभूति) कहते हैं, वह है। और वह सिम्पैथी भी बहुत अधिक है। उसने बहुत ज्यादा लिखना-पढ़ना नहीं सीखा था; लेकिन अपनी सहज बुद्धि के बल से उसने समझ लिया था कि मासिक पत्रों में मेरी जो दो-एक कविताएँ निकला करती हैं, वे बहुत ही अच्छी होती हैं। वह रोज मेरा टेबुल दोनों वक्त ऐसे अच्छे ढंग से साफ करके और सजाकर रखा करती थी कि मुझे अपनी बाल्यावस्था की उस समय की बात याद आ जाती थी, जिस समय लिखना-पढ़ना सिर्फ टेबुल की शोभा बढ़ाने के लिए हुआ करता था। अगर मैं किसी दिन अधिक रात को जागकर कुछ लिखता या पढ़ता था, तो वह कभी इस बात के लिए जिद नहीं करती थी कि मैं उसे छोड़कर सो रहूँ। कभी मैंने उसके मुँह से यह भी नहीं सुना कि कमरे में लम्प के जलते रहने के कारण उसे सोने में दिक्कत होती है। हो सकता है कि सचमुच ही उसे कुछ भी दिक्कत न होती हो। शिकायत करने का एक ऐसा अच्छा और उपयुक्त अवसर पाकर भी वह उसे छोड़ देती है। इसी को तो महत्ता कहते हैं। आप लोगों में से जिन लोगों ने अभी तक विवाह नहीं किया है, उनसे मैं बहुत धीरे से कहता हूँ कि यदि आप लोगों को कभी विवाह करना ही पड़े तो भ्रमर सरीखी स्त्री के साथ कीजियेगा।

भ्रमर ने वह कागज फिर यत्न-पूर्वक पैड के नीचे दबाकर कहा—वाह !

यह ठीक उसी तरह की बात थी, जिस तरह लड़कों का उत्साह बढ़ाने के लिए उनसे कहा जाता है—वाह जी, वाह ! चाकलेट लोगे, चाकलेट ?

मैंने कुरता पहनते हुए कहा—अच्छा, लाओ पैसे दो।

भ्रमर ने कुछ देर तक मेरे मुख की ओर देखकर कहा—सचमुच तुम कैसी सुन्दर कविता लिखते हो ? इतनी सुन्दर मुझे और कोई कविता नहीं लगती।

मैं सहसा ठठाकर हँस पड़ा।

भ्रमर ने पूछा—क्यों, क्या हुआ ?

'नहीं, कुछ भी नहीं। लाओ पैसे दो। देर हुई जा रही है। अब तो एक छोटी और चिपटी-सी हिलसा मछली लानी ही पड़ेगी।'

× × ×

मैंने जो भ्रमर से कहा था—मैं आज स्कूल नहीं जाऊँगा ; वह अवश्य ही बिलकुल व्यर्थ की बात थी। न जाने से दो रुपयों का नुकसान होता था। साल भर में सिर्फ बारह दिन की तनख्वाह के साथ छुट्टी मिलती थी और वे छुट्टियाँ मैंने ले ली थीं जनवरी में ही। जाड़े के दिनों में सोकर उठने में देर हो जाया करती थी। दस बजे स्नान करने का ध्यान आते ही रुलाई-सी आने लगती थी। भविष्य की बात मैंने कभी सोची ही नहीं थी। बरसात भर स्कूल की हाजिरी बजाई थी और हफ्ते में लगातार दो-दो दिन भींगा था। चार दिन इन्फ्लुएन्जा में पड़ा रहा। तकदीर से उन चार दिनों में ही एक एतवार भी आ पड़ा था जिससे कम-से-कम दो रुपए तो बच ही गये थे। जीवन मानो शीत-आतंक हो गया। बीच-बीच में भ्रमर रात को सोने के समय पैरों में सरसों के गरम तेल की मालिश कर दिया करती थी, इसी से जान बच गई थी। जय हो भ्रमर की !

तो भी बीच-बीच में मैंने ख्वाहमख्वाह कई नागे किये थे—और वह भी बिलकुल गुस्से में आकर। मैं सोचता था कि काटो न भाई, तनख्वाह ही तो काटोगे न। इससे ज्यादा और क्या कर लोगे ? मैं नहीं जाऊँगा, किसी तरह नहीं जाऊँगा। तुम क्या कर सकते हो ? खाट पर (उसी खाट पर, जो ब्याह में मुझे ससुराल से मिली थी) मैं दिन भर चित सोया हुआ मालिकों का सिर चबाया करता था। यह मानना ही पड़ेगा कि समय काटने का यह परम उपादेय उपाय है। लेकिन इधर प्रायः महीने भर से रोज हाजिरी बजाता हूँ। दुर्गा-पूजा के महीने में खरच सिर पर है। एक रुपया कम हो जाने का मतलब है पूरा एक रुपया कम हो जाना। आज भी मैं भ्रमर के हाथ की बनी हुई खूब बढ़िया हिलसा मछली खाकर और

भ्रमर के हाथ का बना हुआ खूब बढ़िया पान चबाता हुआ, सिर पर छाता (वही छाता जो ब्याह में मिला था) लगाकर घर से निकल पड़ा। अब क्या है! अब त सिर्फ दो ही दिन हैं! पूजा की छुट्टियाँ तो आ ही गई हैं।

× × ×

मेरी इस लिखने की शैली का सौंदर्य आदि देखकर हो सकता है कि कुछ बुद्धिमान पाठक यह सोचकर अवाक् हो जायँ कि मैं आखिर स्कूल की मास्टरी क्यों करता हूँ। लेकिन मैं स्वयं अवाक् हुआ था नौकरी पाकर। सच तो यह है कि मैंने कभी नौकरी पाने की आशा ही नहीं की थी। एडवान्स और अमृत बाजार पत्रिका में दो दिन विज्ञापन निकला था। बंगाल भर के भिन्न-भिन्न नगरों और विभागों, गंजों और गांवों से सब मिलाकर सत्तासी दरख्वास्तें पड़ी थीं। मुझे यह संख्या बिलकुल ठीक याद है। भला इतने आदमियों में मेरा कहाँ ठिकाना था? अवश्य ही मेरी अव्वल नम्बर की डिग्री थी। लेकिन मेरे पास सिफारिश का कोई ऐसा जोर नहीं था जिससे मैं वह डिग्री ठीक तरह से किसी के सामने रख सकता या काम में ला सकता। और भी बहुत-से लोगों की इसी तरह की डिग्रियाँ थीं; और खूब भारी-भारी और वजनदार डिग्रियाँ थीं। इसके सिवा अब तक की मेरी जितनी 'जानकारी' थी, वह सब केवल जीवन के कार्यों की ही थी--लड़के पढ़ाने के सम्बन्ध में मेरी कुछ भी जानकारी नहीं थी। भला मैं किस बल पर साहस कर सकता था? लेकिन फिर भी आखीर में नौकरी जो मुझे ही मिली। इसके लिए यही कहना पड़ेगा कि बिलकुल तकदीर ही के जोर से! और इसका मतलब यह है कि भ्रमर की तकदीर के जोर से, जो उस समय अपने पिता के घर में पियर्स के साबुन, ओएटिन, गाने के उत्साह, शरत् बाबू के उपन्यासों और महीने में दो फिल्मों आदि की सहायता से मेरे लिए तैयार हो रही थी। जब मैं नौकरी ढूँढ़ता-ढूँढ़ता बिलकुल परेशान हो गया था, तब मैंने अचानक अपना ब्याह कर डाला था। बंगाल में स्त्रियाँ ढूँढ़नी नहीं पड़ती, वहाँ स्त्रियाँ बहुत होती हैं। मेरी एक बूआ ने एक बार कहा था कि तुम बिलकुल निकम्मे हो, किसी काम के नहीं हो। स्वयं तुम्हारे भाग्य से कुछ भी न होगा। और भाग्य का मुँह अपनी ओर फेरने के लिए ही तुम्हें इस समय ब्याह करने की आवश्यकता है। उसकी यह दूर-दृष्टि देखकर मैं तो अवाक् हो गया था। जो हो ईश्वर को इसी बात के लिए धन्यवाद है कि

मुझे एक ऐसा अवलम्बन तो मिल गया है, जिसके सहारे मैं इस भव-सागर में डूब रह सकता हूँ। लेकिन रुपए ? भ्रमर यह बात समझती है कि संसार में सभी लोगों के पास रुपए नहीं हो सकते ; और यही बात वह मुझे भी समझाती रहती है। और यदि काम की बात कहो, तो संसार में कोई काम करने में ही आनन्द होता है। स्कूल में थर्ड क्लास में एक थर्ड क्लास जीवित बंगाली कवि के ऐसे पद्य मुझे पढ़ाने पड़ते हैं, जिन्हें छूने और देखने में घृणा होती है। लेकिन फिर भी मैं सदा इस बात का मन्त्र की तरह जप करता रहता हूँ कि सब बातों का विचार करते हुए मैं बहुत मजे में हूँ। लेकिन इसमें भी बाधा आ पड़ती है। पास ही नीचे की ओर एक और क्लास है। मेरे उस क्लास के बीच में पतले तख्तों की सिर्फ एक तख्तबन्दी है। आठ-दस बरस के लड़के कोई प्रशान्ति और गम्भीरता के तो दृष्टान्त होते ही नहीं। इसलिए खूब ही शोर होता है। मेरा क्षीण कण्ठ-स्वर मेरे ही कानों में डूब जाता है। जो हो, इससे मेरे मन को कुछ शांति मिलती है।

जो मैं किसी दिन कवि होने का स्वप्न देखा करता था, वही मैं बंगला भाषा की निकृष्टतम रचनाओं के कुछ नमूने पढ़ाकर अपने दिन बिताता हूँ। सुनता हूँ कि स्कूल में मेरा नाम हो गया है। किसी जमाने में मैंने ज्योतिष शास्त्र का कुछ अध्ययन किया था, इससे मैं जानता हूँ कि मेरे हाथ में ख्याति की रेखा होने के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं था। लेकिन उस समय यह बात मेरी समझ में नहीं आई थी कि उस ख्याति का मतलब यह निकलेगा।

हर दम मेरा यही जी चाहता रहता है कि गले में फाँसी लगाकर मर जाऊँ, लेकिन यही सोचकर बहुत कष्ट से अपने आपको रोकता हूँ कि मेरे ऐसा करने से बेचारी भ्रमर विधवा हो जायगी। जिन दिनों मैं कालिज में पढ़ा करता था, उन दिनों मैंने अपने भविष्य को दुराशा में ही देखा था। उन दिनों मुझे दुनिया में एक सिरे से दूसरे सिरे तक बिल्कुल झिलमिला-सा दिखाई देता था। आज मेरा वह संसार छोटा होता-होता आकर इस स्कूल की दीवारों में सीमाबद्ध हो गया है या भ्रमर की अध-मैली साड़ी के आँचल की सीमा के अन्दर आ गया है। इसीका नाम जीवन है।

* * *

मैंने बहुत बार यह सोचा है कि मैं नौकरी छोड़ दूँगा; यहाँ तक कि अब इस बात का बार-बार विचार करना भी अच्छा नहीं लगता। अब मैं इसे इसी तरह बराबर सहन करता जाऊँगा; और एक दिन ऐसा आवेगा, जब कि इस नौकरी से मुझे कुछ भी कष्ट न होगा। हाँ, यही आशा है; लेकिन यही तो दुःख भी है। यही तो सबसे अधिक दुःख की बात है कि एक दिन ऐसा आवेगा, जब कि मुझ पर किसी बात का कुछ असर ही न होगा।

मैं कोई साल भर से नौकरी कर रहा हू, लेकिन इसी बीच मे मेरा स्वभाव बहुत कुछ शिथिल हो गया है। पहले मैं बहुत-सी बातें सोचा करता था। सोचता था कि लड़कों के मन में साहित्य-रस का संचार करूँगा, इत्यादि-इत्यादि। लेकिन अब मैं सोचता हूँ कि यह सब पागलपन है। यह चिड़ियाखाने में शिम्पैंजी के कमरे में बैठकर रवीन्द्रनाथ के काव्य पढ़ने के ही समान पागलपन है। रवीन्द्रनाथ मेरे सिर-माथे पर रहें और साहित्य-रस भी मेरे सिर-माथे पर रहे। मुझे तो अब हर महीने तनख्वाह लेने से काम है।

× × ×

इसके सिवा हमारे स्कूल के मालिक भी वह बात नहीं चाहते। वे तो यही चाहते हैं कि मैं किसी तरह कोर्स समाप्त करूँ। वे लोग काम की नाप-तौल समझते हैं। इसलिए मैं भी समझता हूँ कि कोर्स समाप्त किये चलूँ। बस, घुड़दौड़ है। और क्या? यही यथेष्ट है। जो सब चीजें मुझे पढ़ानी पड़ती हैं, उनके लिए आध मिनिट अतिरिक्त समय बिताना भी आत्मा का अपमान है। और फिर यह बात भी नहीं है कि मुझे आध मिनिट का अतिरिक्त समय मिल ही जाता हो। साल भर में चार बार तो परीक्षाएँ होती हैं। हर बार सौ के करीब कापियाँ देखनी पड़ती हैं। बस, पहली बार ही कुछ कष्ट हुआ था। उसके बाद ही मैं भी सीख गया। अब मैं पहले कापी पर लड़के का नाम पढ़ता हूँ और तब उस लड़के के चेहरे का खयाल करने का प्रयत्न करता हूँ; (क्योंकि सभी नामों और सभी चेहरों का ख्याल रखना मनुष्य के लिए असम्भव है)। इधर-उधर दो एक लाइनें पढ़ लेता हूँ। और नम्बर देता चलता हूँ। लेकिन बराबर अन्त तक यही देखने में आता है कि अनुमान करने में कहीं कोई भूल नहीं हुई है। न मालूम किस तरह की एक प्रवृत्ति ही उत्पन्न हो जाती है। यही तो जानकारी है।

उस दिन आश्विन की सुनहली धूप में रास्ते में चलता-चलता यही सब बातें सोच रहा था। साथ ही भ्रमर की बात भी सोच रहा था। अपने गीत की लिखी हुई चार लाइनों की बात भी सोच रहा था। यह अच्छा नहीं हुआ। आखिर कोई लिखने ही क्यों बैठे? क्यों? स्वयं अपनी दृष्टि में अपना सम्मान बढ़ाने के लिए; संसार के सामने, स्कूल के सामने और पृथ्वी के जीवन के सामने अपनी प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए। प्राण भी क्या सहज में मर जाते हैं! परन्तु बीच-बीच में विद्रोह करके उठना भी चाहते हैं। मानो यह बतलाना चाहते हैं कि अभी तक हम हैं। इसके सिवा और क्या है?

लेकिन एक दिन था जब कि मुझे लिखना आता था। किसी दिन मैं सचमुच कवि था। लेकिन यह सब कब की बात है? किसी जन्म में, किसी जगत में, अतीत की किसी अस्पष्टता में यह बात थी। उस दिन जिसकी आँखों की ओर देखकर स्वर-स्वर में मेरा समस्त हृदय उछला पड़ता था, क्या आज आश्विन के इस आकाश में उसी की दृष्टि सब जगह फैली हुई है?

× × ×

खूब धीरे-धीरे, एक-एक करके बहुत देर तक नाम पुकारता रहा। बहुत से नाम थे, इसलिए बहुत-सा समय भी लग गया। तो भी उसमें बहुत ज्यादा समय नहीं लगा था। छुट्टियाँ बहुत नजदीक आ गई थीं, इसलिए लड़कों का मन भी बहुत चंचल हो गया था। वे लोग काना-फूसी कर रहे थे और आपस में धीरे-धीरे बातें कर रहे थे। दो-एक लड़कों ने कुछ इधर-उधर की बातें भी पूछी थीं और मैंने उनका संक्षेप में उत्तर भी दिया था। मुझे ऐसा मालूम होता है कि उस समय उन लोगों की यह इच्छा थी कि मैं यह घन्टा बातचीत में ही बिता दूँ। उनकी इच्छा उनके मनुष्यत्व का परिचय देनेवाली है। लेकिन नहीं, उन्हें मनुष्य मान लेने से काम नहीं चलेगा। वे लोग इससे और भी अधिक लाभ उठाना चाहेंगे। ये लोग लड़के हैं, ये बर्बर हैं। ये लोग धमकी-घुड़की समझते हैं, कान मलना समझते हैं, लेकिन भद्रता नहीं समझते, प्रीति नहीं समझते। शैशवावस्था से इसी तरह उन लोगों को समझाया गया है। इन लोगों के पास आकर अब मैं भी अपनी यह धारणा बदलने के लिए बाध्य हुआ हूँ। इसके लिए मैं किसे दोष दूँ? भला विषावत्-चक्र का आरम्भ कहाँ है?

पहले इन लोगों को अपने साथ हिलाने-मिलाने में कुछ कष्ट हुआ था। अभी मेरी अवस्था कम ही है। साधारणतः देखने में स्कूल मास्टर जैसे हुआ करते हैं, उनकी तुलना में मैं बहुत ही कच्चा और अल्पवयस्क हूँ। मेरे मुख पर आनन्द और प्रसन्नता का जो भाव आता था, उसे मैं किसी तरह दबा ही नहीं सकता था! लेकिन लड़के बहुत शरारत करते थे। इसलिए अब मैंने बिलकुल नये ढंग का चेहरा बनाना शुरू किया, अब मेरा मुख इतना भयानक और गम्भीर हो गया कि आँखों की पलकें तक नहीं गिरने पाती थीं। ऐसा मालूम होता था कि मैं हर दम बिगड़ा ही रहता हूँ। जरा-सा कोइ बहाना मिल जाने पर दो-चार छोटे बच्चों को चुन लेता था और उन्हें खूब सजा देता था। इसका जो फल हुआ, वह भी आश्चर्य-जनक था। अब लड़कों को मेरे मुख की तरफ़ देखकर बात करने का भी साहस नहीं होता था। उस समय मैंने अपना जो चेहरा बनाया था, वह अब मैं हटा भी नहीं सकता—यदि अब मैं अपना वह चेहरा बदलना चाहूँ तो भी बदल नहीं सकता। वह चेहरा मानो मेरे मुख पर खूब अच्छी तरह जमकर बैठ गया है। क्लास में पैर रखते ही न जाने किस प्रकार वह चेहरा आपसे आप आकर मेरे मुख पर लग जाता है और मुझे इस बात का पता भी नहीं चलने पाता। सम्भव है कि किसी दिन वही चेहरा स्थायी रूप से मेरे मुख पर खूब पक्का होकर बैठ जाय। यह बात तो होगी ही। फिर व्यर्थ इसके लिए सोच करने से क्या लाभ?

नहीं, इस तरह व्यर्थ की बातें करने से काम नहीं चलेगा। आशु बाबू का अत्यन्त निन्दर्नाय जीवन चरित मुझे पढ़ाना ही पड़ेगा। और इस तरह पढ़ाना पड़ेगा, जिसमें लड़के भी अच्छी तरह समझ लें कि मुझमें कहीं जरा भी कच्चापन नहीं है। खाँस-खँखारकर और गला साफ़ करके मैंने किताब खोली। इस बीच में एक बार मेरी दृष्टि बाहर की ओर गई। शहर की छतों की लहरों के ऊपर थोड़ा-सा आकाश मानो उत्ताप आलस्य के कारण दीप्ति में मूर्छित हो रहा था। आखिर मैंने यह क्या किया? ऐसा स्वर्णाभ नील और स्वप्न के समान आज का दिन क्या मुझे आशु बाबू का जीवन-चरित पढ़ाने में बिताना पड़ेगा? लेकिन कोर्स बिना समाप्त किये काम किस तरह-चल सकता है? ड्यूटी जो ठहरी।

मैंने अपनी दृष्टि को लौटाकर पुस्तक के पृष्ठों पर निबद्ध किया। पढ़ाना आरम्भ किया। उस पूरे कमरे की स्तब्धता में बस एक मेरा ही कण्ठ-स्वर सुनाई

देता था। आश्चर्य तो इस बात का है कि इन लड़कों में से कोई मेरा गला दबाकर मुझे मार क्यों नहीं डालता ?

इसी बीच में हठात् कमरे में और एक शब्द हुआ। मैंने आँख उठाकर देखा तो मालूम हुआ कि पिछवाड़ेवाली खिड़की से होकर एक बहुत बड़ा और खूब काला भौंरा कमरे के अन्दर घुस आया है। उसने अपने पंख समेट लिये हैं और अन्धों की तरह छोटे-छोटे चक्र बनाकर लड़कों के सिर के ऊपर घूम रहा है। वह अपने गुंजन से सारा कमरा भर रहा है, सारा आकाश भर रहा है और सारा विश्व भर रहा है। कहीं और कुछ भी नहीं है, सब जगह बराबर यही गुंजन ही सुनाई देता है। मेरी आँखों के सामने से क्लास की दीवारें बराबर दूर हटती गई और अन्त में जाकर क्षितिज के साथ मिल गई, यहाँ तक कि लड़कों के मुख भी नहीं दिखाई देते थे। इसके बाद ऐसा मालूम होने लगा कि रात हो गई, कमरे के अन्दर तो थोड़ा-सा नीलाभ अन्धकार दिखाई दिया और बाहर समस्त आकाश में ज्योत्स्ना बिखरी हुई दिखाई देने लगी। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि खिड़की के पास स्वयं मेरी भ्रमर ही आकर बैठ गई है। अमरूद के एक पेड़ के पत्तों में से होकर छाया की जालदार ज्योत्स्ना आकर पड़ रही है, उसके बालों पर और उसके होठों पर और तिरछी होकर पड़ रही है, उसके वक्ष-स्थल पर, लहराते हुए लाल समुद्र के ज्वार की तरह और हृत-पिण्ड मांस की दीवारों के साथ टकराकर पछाड़ खाकर गिर रहा है और मर रहा है।

'तुमने इतनी देर क्यों की ?'

बात कहने में मुझ मानो डर लग रहा था। मैं उसके बालों, होठों और शिथिल बाहुओं की तरफ देखकर चुप हो रहा।

विद्युत् के समान स्तब्धता थी। उसने भी सिर नीचा कर लिया, मानों उसे भी मेरे नेत्रों की ओर देखने का साहस नहीं होता था और यह डर हो रहा था कि कहीं दृष्टि के साथ दृष्टि का संघर्षण होने पर कोई भयंकर रहस्यमय अग्नि न प्रज्वलित हो उठे। उसके सिर पर की माँग उस ज्योत्स्ना में आभामय हो गई थी। मानो किसी बहुत दूर के और दुस्साहसपूर्ण मार्ग का संकेत था।

'इतनी देर तक कहाँ थे ?'

वायु में निश्वास का स्वर भर गया—कहाँ थे ? क्या तुम यह नहीं समझते हो कि मुझे कितना कष्ट होता है ? तुमने क्यों मेरे साथ प्रेम किया था ? तुम्हें छोड़कर मैं किस तरह जीती बचूँगी ?

वह रुद्ध-स्वर बोलने लगा कोमल अर्द्ध-स्फुट रात्रि के हृदय के किसी मर्मर के समान। इसके बाद वह बढ़कर उच्च और तीव्र होने लगा। ऐसा मालूम होता था कि कोई संहत ध्वनि हो रही है अथवा बात-चीत से रहित कोई गुंजन है—ठीक उसी तरह का गुंजन है, जिस तरह यह भ्रमर उच्च स्वर से मेरे कानों के पास आनन्दपूर्वक गुंजन कर रहा है। इसके बाद वह भ्रमर ठीक मेरे सिर के ऊपर से होता हुआ और अपने चंचल पंख हिलाता हुआ पीछेवाली खिड़की से बाहर निकल गया।

'मास्टर साहब, ज़रा इम्पार्टेंट पैसेजों पर निशान कर दीजियेगा।'

मेघ-मल्लार

विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय

[विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय अवस्था के विचार से आधुनिक नहीं हैं। लेकिन रचनाओं के विचार से ये आधुनिक लेखकों के सम-सामयिक ही माने जाते हैं। इन्होंने 'पथेर पाँचाली' नामक एक बड़ा उपन्यास लिखकर थोड़े दिनों में ही विशेष प्रतिष्ठा प्राप्त की है। इसके बाद इन्होंने जो और सब पुस्तकें लिखी है, उनमे से कोई पुस्तक उनकी प्रथम रचना के अनुरूप नहीं हुई है। ये कलकत्ते के मैट्रि-पोलिटन स्कूल में अध्यापक का काम करते हैं। साथ ही 'प्रवासी' नामक मासिक पत्रिका में भी नियमित रूप से कुछ-न-कुछ लिखते रहते हैं।

विभूतिभूषण वन्द्योपाध्याय की लिखी हुई कहानियों की संख्या बहुत अधिक नहीं है; लेकिन फिर भी जो थोड़ा-सी कहानियाँ इन्होंने लिखी हैं, वे सभी विशेष रूप से पढ़ने के योग्य हैं। इनकी कहानियों मे घटना या चरित्र की अपेक्षा प्रकृति की ही विशेष प्रधानता होती है। पेड़-पौधों, नदी, पशु-पक्षी आदि पर इनका असाधारण प्रेम है। इनका यह प्रेम इनकी रचनाओं में जगह-जगह प्रकाशित होता है। इन्हीं सबकी पट-भूमि पर इनकी कहानियों की स्थिति होती है। इनकी कहानियाँ चारों ओर से घूम-फिरकर प्रकृति को ही अपना केन्द्र बनाती हैं। इसीलिए इनकी रचनाओं में वर्णनात्मकता और कवित्व कुछ अधिक मात्रा में आ जाता है। इतना होने पर भी इनकी रचनाएँ मनोज्ञ होती हैं। इसका एकमात्र कारण यही है कि ये जो कुछ लिखते हैं, वह वास्तविक आवेग से ही लिखते हैं। यदि बिलकुल आधुनिक मान-दंड से इनकी रचनाओं की माप की जाय, तो इनकी कहानियों को ठीक-ठीक अर्थ में कहानी कहना बहुत ही कठिन हो जाता है। इसका कारण यह है कि इनकी रचनाओं में विश्लेषण की अपेक्षा संश्लेषण और उद्घाटन की अपेक्षा नियन्त्रण की ही अधिकता दिखाई देती है। तो भी रवीन्द्र के आदर्श-वाली कहानियों की दृष्टि से इनका कुछ निजी महत्व होता है। यह महत्व इसलिए और भी बढ़ जाता है कि इनकी कहानियों में देहात से सम्बन्ध रखनेवाली बातों

का बहुत ही मधुर और रमणीय विकास होता है। इनकी 'मेघ-मल्लार' नाम की कहानी प्राचीन काल की बातों के आधार पर लिखी गई है। जो दृष्टि होने पर अतीत को वर्तमान के रूप में अंकित किया जा सकता है, वह दृष्टि इनमें है। यह विभूतिभूषण की एक विशेष और उल्लेख-योग्य रचना है।]

मेघ-मल्लार

परमिता के मन्दिर में साँप का खेल देखने के लिए बहुत-से स्त्री-पुरुष एकत्र हुए थे। उनमें प्रद्युम्न भी एक था।

उस दिन ज्येष्ठ मास की संक्रान्ति थी। चारों तरफ़ के गाँवों से स्त्रियाँ दस-परमिता की पूजा करने के लिए आई थीं। इस अवसर पर बहुत-से चतुर सपेरे और बाजीगर भी अपने-अपने कौशल दिखलाने वहाँ जमा हुए थे। माली विविध प्रकार के फूलों की माला से डालियाँ सजा-सजाकर खरीदार की प्रतीक्षा कर रहे थे। एक व्यापारी मगध से बहुत-सी बहुमूल्य साड़ियाँ लाया था, इसलिए स्त्रियों की सबसे अधिक भीड़ उसी दुकान पर थी। प्रद्युम्न ने सुना था कि ज्येष्ठ-संक्रान्ति में होनेवाले उत्सव के अवसर पर परमिता-मन्दिर में एक विख्यात वेणु-वादक गायक आनेवाला है। वह मन्दिर में उसी की खोज में गया था। किन्तु सारा दिन ढूँढ़ने पर भी भीड़ के बीच में प्रद्युम्न को गायक का पता नहीं लगा।

संध्या के कुछ पहले मन्दिर के हाते में एक बाजीगर ने साँपों के आश्चर्यजनक खेल दिखलाना शुरू किया। कौतुक-प्रिया-नारियाँ वहाँ एकत्र होने लगीं। और इस प्रकार थोड़ी ही देर में बहुत बड़ी भीड़ जम गई। प्रद्युम्न भी वहाँ खड़ा था अवश्य, पर तमाशे की ओर तनिक भी उसका ध्यान न था। वह भीड़ के बीच प्रत्येक मनुष्य को बहुत मनोयोग के साथ देखता कि शायद कहीं कुछ उसके हाव-भाव से वेणुवादक होने का लक्षण परिलक्षित हो। इस तरह बहुत देर तक देखने के बाद उसकी नज़र एक प्रौढ़ व्यक्ति पर पड़ी जो जीर्ण-शीर्ण मलिन वस्त्र पहने उसी भीड़ के बीच एक जगह पर अलग खड़ा था। न मालूम क्यों प्रद्युम्न के मन में लगा—जैसे यही वह गायक है। प्रद्युम्न आदमियों की भीड़ को चीरकर उसके नज़दीक पहुँचने की चेष्टा कर ही रहा था कि उस व्यक्ति ने हाथ उठाकर उसे भीड़ से बाहर आने का इशारा किया।

बाहर आते ही अधेड़ उम्र के उस व्यक्ति ने उससे पूछा—मैं अवन्ती का गायक सूरदास हूँ। आप मुझे ही तो खोज रहे थे न?

प्रद्युम्न आश्चर्य में पड़ गया। वह सोचने लगा—इसने मेरे मन की बात कैसे जान ली ?

प्रद्युम्न ने शिष्टतापूर्वक प्रकट किया कि हाँ, वह उसी को खोज रहा था।

प्रौढ़ ने कहा—तुमको मैं पहचानता हूँ। एक समय तुम्हारे पिता के साथ मेरी बड़ी मित्रता थी। जब मैं काशी जाता था, तो बिना तुम्हारे पिता से मिले वापस नहीं लौटता था। मैंने तुमको लड़कपन में देखा था। उस समय तुम्हारी उम्र बहुत कम थी।

'आप यहाँ कहाँ ठहरे हैं ?'

'नदी के किनारे एक जीर्ण-शीर्ण मन्दिर है। क्या तुमने उसे देखा है ?'

'हाँ, वहाँ पहले एक संन्यासी रहते थे न ?'

'अब भी वे वहीं हैं। तुम किसी दिन वहाँ आकर मुझसे मिलो। तुम इस समय कहाँ हो ?'

'इस समय मैं बिहार में पढ़ता हूँ। यहाँ तीन वर्षों से हूँ। आप मन्दिर में कब तक ठहरेंगे ?'

'सो मैं तुम्हें मिलने पर बतलाऊँगा। तुम शीघ्र ही एक दिन मुझसे मिलो।'

प्रद्युम्न ने प्रणाम करके विदा ली।

(२)

शाम तब भी नहीं हुई थी। मन्दिर एक छोटे-से पहाड़ के ऊपर था। उसके दोनो ओर ढालू मार्ग थे। इसी मार्ग से स्त्रियाँ अपने घर लौट रही थीं। प्रद्युम्न की आँखें मानो एक बार किसी की खोज में स्त्रियों के बीच इधर-उधर दौड़ गईं। और फिर वह उनके पीछे-पीछे बड़ी शीघ्रता से उतरने लगा। आचार्य शीलव्रत एक बहुत ही परुष प्रकृति के व्यक्ति हैं। वे प्रद्युम्न की चंचलता और कौतुक-प्रियता को भलीभाँति जानते हैं। इसीलिए और छात्रों से वे इस पर कुछ विशेष ध्यान दिया करते हैं। आज इतनी रात से लौटने पर वह उनको क्या जवाब देगा ?

मोड़ लेते ही पहाड़ की आड़ मिट गई। अब बिल्कुल खुला मैदान था। प्रद्युम्न ने देखा कि नदी के किनारे मन्दिर की चोटी झलक रही है। चोटी के ऊपर

छायाच्छन्न आकाश में झुंड-के-झुंड पत्ती डैना फैलाये अपने नीड़ की ओर लौट रहे थे। इसी समय अचानक पीछे से प्रद्युम्न के वस्त्र पकड़कर किसी ने धीरे से खींचा।

प्रद्युम्न पीछे मुड़कर आश्चर्य-पूर्वक बोला—तुम कब आई, सुनन्दा! मैंने तुम्हें इतना खोजा, पर तुम कहीं भी दिखाई न पड़ी।

पहले नवयुवती का मुख लज्जा से लाल हो गया। इसके बाद फिर अभिमान-पूर्वक बोली—मुझे ही खोजने के लिए आप यहाँ पधारे थे क्या? सँपेरे और बाजीगर की ओर घूर-घूरकर जो तुम देख रहे थे, सो मैं नहीं जानती हूँ क्या?

'सच कहता हूँ सुनन्दा! तुमको भी खोजता था। सीढ़ी से उतरते समय भी खोजा था और अभी भी खोज रहा था; तुम किसके संग आई?'

इसी समय स्त्रियों का एक झुण्ड पहाड़ से इसी राह उतरने लगा, सुनन्दा उस ओर नजर पड़ते ही हठात् प्रद्युम्न को पीछे छोड़ उग्रगति से नीचे चल पड़ी।

पीछे अपरिचिता स्त्रियों के झुण्ड को देखकर सुनन्दा का पीछा करना उसने उचित नहीं समझा। कुछ क्षण वह मौन खड़ा रहा। फिर निराशा-युक्त खिझ-लाहट के साथ अपनी गर्दन को कुछ उठाये लापरवाही-पूर्वक उचकता हुआ चलने लगा।

शाम बीत चली। अँधियारा चाँदनी के रूप में बदल गया। किन्तु अन्य-मनस्कता की दशा में प्रद्युम्न को यह सब मालूम न हो सका। थोड़ी देर बाद जब वह होश में आया तो देखा, पूर्णिमा का उजेला गली-कूचे को स्वच्छ बना रहा है। अब पढ़ना-लिखना वह कैसे करेगा? आचार्य पूर्णवर्द्धन जब कल त्रिपिटक का पाठ पूछेंगे और उससे उसका कोई समुचित उत्तर न पायेंगे, तो वह क्या करेगा? इस प्रकार उस रात में युग-युग की चिन्ता उसके हृदय को आकुल बनाने लगी। उसका स्वच्छन्द मन यदि प्रकृति की इस ज्योत्स्ना-पूरित सुन्दरता पर अलिन्दमानस सुन्दरी की तरह पीछे-पीछे चौकड़ियाँ भरता चलता है तो क्या वह दोषी है?

दसपरमिता मन्दिर की सन्ध्या-आरती की घंटाध्वनि अभी बजी न थी। दूरवर्ती नदी के किनारे के जीर्ण मन्दिर में झिलमिल प्रकाश हो उठा। उत्सव में आये हुए नर-नारीगण ज्योत्स्ना-पूरित पृथ्वी के बीच धीरे-धीरे बहुत दूर अदृश्य हो गये। प्रद्युम्न और अधिक तेजी से चलने लगा।

मार्ग के समीप ही एक वृक्ष के पास जाते ही प्रद्युम्न को मालूम हुआ जैसे कोई उसकी ओट छिपा खड़ा है। कुछ और बढ़ने पर वृक्ष के समीप जाते ही वह किसी परिचित कंठ के सुमधुर ईषत् हास्य से चमककर खड़ा हो गया। देखा वृक्ष के नीचे सुनन्दा खड़ी है। पत्रों के बीच से जगमग ज्योत्स्ना का प्रकाश उसके सर्वाङ्ग पर धूप-छाँह की जाली बुन रहा है। प्रद्युम्न के देखते ही सुनन्दा अपनी गर्दन हिलाकर बोल उठी—वाह! यह भी खूब। तुम वृक्ष के नीचे से मार्ग तय कर रहे हो, या मुझे देखना चाहते हो?

सुनन्दा को देखकर प्रद्युम्न को मन ही मन खूब खुशी हुई। प्रकाश रूप से वह बोला—नहीं, मैं और तुमको देखूंगा? क्यों? वृक्ष के नीचे छिपकर खूब मजा करती हो? अगर मैं नहीं देखता, तो होता ही क्या? सचमुच तुम्हारे ऊपर मैं बहुत नाराज़ हूँ, सुनन्दा।

सुनन्दा ने उत्तर दिया—वाह, गल्ती भी करते हो तुम और क्रोध भी करते हो तुम्हीं! उस दिन क्या कहा था, सो याद है?

'तुम बड़े आदमी की लड़की हो तुम्हारी बात ही अलग है। किन्तु बात क्या थी, सो तुमने कहा था?'

'जाओ, और झूठ बोलने की जरूरत नहीं। क्या बात थी, सो तुम खुद ही विचारो। इसी कारण मैं उस दिन बोली नहीं।'

प्रद्युम्न—कुछ विचार कर, बोल उठा—

'समझता हूँ—वही बाँसुरी?'

सुनन्दा अभिमानपूर्वक बोली—विचार करके देखो। तुमने कहा था न, कि तुम दोपहर से ही मन्दिर में आकर बैठे हो? तुम बनावटी बातों से ऊपर होना चाहते हो।

प्रद्युम्न इस बार हँस उठा। बोला—अच्छा सुनन्दा, अगर तुमने मुझे देखा ही, तो पुकारा क्यों नहीं?

'मैं क्या अकेली थी? दोपहर में मैं अकेली जरूर आई थी; पर उस समय तो तुम आये नहीं। उसके बाद मेरे गाँव की सभी सखियाँ पहुँच गईं। फिर मैं तुम्हें पुकारती कैसे?'

'अच्छा, तुमने मुझे धर लिया। हाँ, मुझसे ही गलती हुई। लेकिन बार-बार जो तुम सँपेरे और जादूगर की बात बोलती हो सुनन्दा, सो मैं सँपेरे औ'

जादूगर की तलाश में नहीं था। मैंने सुना था कि अवन्ती के एक निपुण वेणु-वादक आनेवाले हैं। तुम तो जानती हो, बहुत दिनों से वेणु सीखने की मेरी अभिलाषा है। इसी लिए उनकी खोज में मैं फिर रहा था। वे मुझे मिले भी। वे इस समय नदी किनारे मन्दिर में रहते हैं। अच्छा, तुम्हारे पिताजी कहाँ हैं?'

'तीन-चार दिन बीते कि महाराज की बुलाहट पर वे कौशाम्बी गये हैं।'

प्रद्युम्न ठठाकर हँस उठा—ओह! इसी से तुम इतनी रात तक...

सुनन्दा ने जल्दी-जल्दी प्रद्युम्न के मुँह को दोनों हाथों से बन्द कर दिया और फिर बोली—चुप, चुप। क्या तुम्हें इतनी समझ भी नहीं है? अभी आरती से जो लोग फिरेंगे?

प्रद्युम्न हँसी रोककर बोला—इस बार तुम्हारे पिता के आते ही मैं निश्चय ही कह दूँगा।

सुनन्दा क्रोध के साथ बोली—कह देना, आरती तक मैं मन्दिर में इसी प्रकार रहती हूँ। और वे जानते भी हैं।

प्रद्युम्न ने सुनन्दा के सुगठित कोमल कमल-से दाहिने हाथ को अपने हाथ में पकड़ लिया और फिर बोला—अच्छा मैं नहीं कहूँगा। चलो सुनन्दा, मैं तुम्हें बाँसुरी सुनाऊँ। बाँसुरी मेरे साथ ही है। सच कहता हूँ, तुम्हारे सुनाने के लिए ही लाया था। पर भली भाँति बजाना जानने के लिए ही मैं उस गायक को भी खोज रहा था।

नदी किनारे पहुँचकर प्रद्युम्न बहुत हताश हो गया। वह बाँसुरी बजा रहा था अवश्य। पर उसका स्वर आज ढीला ढाला-सा था। उसमें उसके हृदय का कोई योग नहीं हुआ। इसके पहले भी कितनी ही बार एकान्त में बैठकर बाँसुरी बजाई थी और सुनन्दा को अच्छा लगा था। प्रद्युम्न जब कभी विहार के बाहर जाता तो बाँसुरी बराबर उसके संग रहती और उस बाँसुरी के सुमधुर स्वर-साधन में निमग्न होकर कितने दोपहर संध्या के रूप में वह परिणत कर देता।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन बहुत सवेरे ही प्रद्युम्न नदी किनारे के पुराने मन्दिर में गया। उस मंदिर में आज बहुत दिनों से देवता की कोई भी मूर्ति नहीं थी। दीवार में बड़ी-बड़ी दरारें पड़ गई थीं, जिनमें साँप और बिच्छू रहते थे। मन्दिर के अड़ोस-

पड़ोस में गाँव तो अनेक थे, पर किसी गाँव से कभी कोई आदमी भूला-भटका भी इसमें आता-जाता नहीं था; लेकिन इधर लगभग सात मास से इस मन्दिर में एक भिक्षुक संन्यासी निवास कर रहे थे। और उनके दो-चार अनुगामी शिष्यों के इसमें आते-जाते रहने के कारण पहले से रास्ता अब कुछ-कुछ अधिक मँजा-सा मालूम होता था।

उजेला भली भाँति नहीं फैला था। इसी समय सूरदास से प्रद्युम्न की भेंट हुई। वह प्रसन्नता से बोला—चलो, बाहर बैठें। यहाँ बहुत अँधियारा है।

बाहर जाकर प्रकाश में सूरदास ने प्रद्युम्न को एक बार सिर से पैर तक खूब ध्यान से देखा। फिर मन ही मन बोल उठा—होगा, हाँ तुम्हारे द्वारा ही होगा। इस बात को मैं खूब जानता हूँ।

प्रद्युम्न ने जब पहले पहल सूरदास को दूर से देखा था, तो उसके मन में इससे मिलने में कुछ-कुछ अस्वच्छन्दता का अनुभव होता था। पर निकट आते ही उसका वह ख्याल धीरे-धीरे मिट चला। उसने देखा कि सूरदास की बदसूरती के भीतर भी एक अनोखा-सा आकर्षण है, जो सभी समय सभी मनुष्यों में नहीं पाया जाता।

सूरदास ने कहा—मैं तो सोच ही रहा था कि तुम अब आते होगे। हाँ, तुम्हारे पिता तो एक विख्यात गायक थे, तो क्या तुमने भी गाने-बजाने का कुछ अभ्यास किया है?

प्रद्युम्न ससंकोच बोला—हाँ, थोड़ा-सा बाँसुरी बजाने का अभ्यास किया है।

सूरदास ने उत्साह-पूर्वक कहा—यह तो स्वाभाविक ही है। यहाँ ऐसा कोई आदमी नहीं था, जो तुम्हारे पिता को नहीं जानता हो। प्रत्येक उत्सव में कौशाम्बी से तुम्हारे पिता को विशेष निमन्त्रण मिला करता था। हाँ, मैंने सुना है कि तुम अपनी बाँसुरी पर मेघ-मल्लार अच्छा बजा लेते हो।

प्रद्युम्न अति विनम्र स्वर से बोला—ऐसा तो कुछ नहीं जानता पर हाँ, जो मन में आता है उसे किसी तरह बजा लेता हूँ। मेघ-मल्लार भी कभी-कभी अपनी बाँसुरी पर मैंने बजाया है।

सूरदास उत्सुकता-पूर्वक बोला—अच्छा, जरा बजाओ तो देखें कि तुमने कैसा अभ्यास कर रखा है?

बाँसुरी तो प्रद्युम्न के साथ बराबर रहती ही थी—न मालूम किस समय कहाँ सुनन्दा से भेंट हो जाय।

अतः प्रद्युम्न बाँसुरी बजाने लगा। राग-रागिनियों का ज्ञान अपने पिता से उसे अति बाल्यकाल में हो गया था। साथ ही संगीत के प्रति उसकी अपनी स्वाभाविक क्षमता भी थी। उसका कण्ठ-स्वर तो मधुर था ही; किन्तु उसका आलाप भी बहुत अनोखा होता था।

लता-पत्र और फूल-फल के बीच से निकलकर एवं उन्मुक्त आकाश और ज्योत्सना-रात्रि के हृदय को चीरकर जो रस-धारा पृथ्वी पर अनवरत प्रवाहित होती रहती है, वही रस-धारा प्रद्युम्न की बाँसुरी में मूर्त्त हो उठी। सूरदास ने शायद उससे इतने की आशा नहीं की थी। इसी लिए वह प्रद्युम्न को गले से लगाकर बोला—इन्द्रदमन के पुत्र के लिए यह कोई बहुत बड़ी बात नहीं है; यह मैं पहले से भी जानता था।

अपनी प्रशंसा सुनकर प्रद्युम्न का मुख-मंडल लज्जा और संकोच से आरक्त हो उठा।

दो-तीन मिनटों के बाद प्रद्युम्न बिदा के लिए उत्सुक दिखाई पड़ा। सूरदास ने कहा—प्रद्युम्न, सुनो। तुमसे एक गुप्त बात कहता हूँ। इस गुप्त रहस्य को कहने के लिए ही मैंने पहले भी एकाध बार तुम्हारी तलाश की थी। पर इसे सुनने के पहले तुम्हें प्रतिज्ञा करनी होगी कि तुम इसे किसी दूसरे पर प्रगट नहीं करोगे।

प्रद्युम्न अत्यन्त विस्मित हो गया। वह सोचने लगा कि जिस व्यक्ति के साथ मेरी अभी पहली ही मुलाकात है, उससे ऐसी कौन-सी बात होगी, जो गोपनीय हो। अतः वह बोला—नहीं, सुनने से क्या कुछ...

सूरदास बीच ही में बोला—डरो मत। कोई अनिष्टकर बात नहीं है। अगर ऐसी बात होती तो मैं तुन्हें स्वयं ही नहीं बतलाता।

सूरदास की बात जानने के लिए प्रद्युम्न अब तक अत्यन्त अधीर हो गया था। उसने प्रतिज्ञा की कि जो कुछ वह बतलावेगा, दूसरे पर प्रद्युम्न प्रगट नहीं करेगा।

सूरदास धीमे स्वर में कहने लगा—क्या नदी के किनारे जो मैदान है, उसके सामनेवाले टिविटा को तुमने कभी देखा है? उसी टिविटा में आज से बहुत पहले

सरस्वती की एक मूर्ति थी। सुनता हूँ कि इस देश के उस समय जितने बड़े-बड़े गायक थे, वे सभी अपनी शिक्षा समाप्त कर पहले इसी मन्दिर में जाते थे और देवी को पूजा देकर संतुष्ट किये बिना अपना व्यवसाय शुरू नहीं करते थे; पर आज तो वह टिविटा टूट गया है, मगर उसका ढाँचा आज भी खड़ा है। आषाढ़ी पूर्णिमा को उसी जीर्ण टिविटा में जाकर भक्तिपूर्वक मेघ-मल्लार अलापने से देवी सरस्वती तत्काल प्रगट होकर गायक को वरदान देती हैं; पर यह रहस्य आज इस देश में किसी पर प्रगट नहीं है। आषाढ़, श्रावण और भादों इन्हीं तीन महीनों की पूर्णिमा इस काम के लिए विशेष उपयुक्त हैं। इस काम को नियमित समय पर, विशुद्ध चित्त से कर लेने के बाद गायक सिद्धि-लाभ करता है। फिर तो संगीत-शास्त्र की कोई बात उसे जानने को नहीं रह जाती। पर इसके साथ ही एक शर्त यह भी है कि प्रार्थना करनेवाला गायक अविवाहित हो। इसीलिए मेरा विचार है कि आगामी पूर्णिमा को ही तुम और मैं दोनों उस टिवटे में पहुँचकर कोशिश कर देखें। तुम्हारी राय क्या है?

सूरदास की बात सुनकर प्रद्युम्न अवाक् रह गया। उससे यह काम कैसे होगा? आचार्य वसुव्रत ने तो कला के संबन्ध में भाषण करते हुए कई बार कहा है—कला-अधिष्ठात्री सरस्वती देवी की जो कल्पना हिन्दुओं ने की है, वह कल्पना-मात्र ही है। उसमें वास्तविकता का मेल ज़रा भी नहीं है। बिल्कुल सत्य रूप में उसे देख लेना क्या आसान है?

इसी तरह सोचता हुआ प्रद्युम्न बहुत देर तक मौन बैठा रहा।

सूरदास ज़रा व्यग्रता-पूर्वक बोला—क्या तुम्हें यह पसन्द नहीं है?

प्रद्युम्न ने कहा—नहीं, ऐसी बात नहीं, मैं सोच रहा था कि कैसे यह सम्भव...

सूरदास बोला—इसके लिए तुम निश्चिन्त रहो। सचाई अपने आप तुम्हें मालूम हो जायगी। अगर तुम कहो तो आगामी पूर्णिमा को ही पूजा का सारा प्रबन्ध मैं कर लूँ।

सूरदास की बात सुनकर प्रद्युम्न का मन द्विधा और विस्मय के बीच डोलने लगा। वह अपनी गर्दन ज़रा टेढ़ी करके बोला—अच्छा प्रबन्ध कीजियेगा; मैं आऊँगा।

सूरदास—वाह, मैं बहुत खुश हुआ, तुम बीच-बीच में बराबर यहाँ आते रहना। पूजा की तैयारी में दो-एक काम तुम्हें भी करने होंगे। क्या करने होंगे, यह पीछे कहूँगा।

प्रद्युम्न एक बार और अपनी सहमति-सूचक गर्दन हिलाकर सूरदास के पास से विदा हुआ।

चिन्ता करते हुए उसने विहार का रास्ता लिया। वह सोच रहा था—उफ़, देवी सरस्वती स्वयं, श्वेत पद्म की तरह सुंदर है रंग जिसका और अलौकिक प्रतिभा से प्रतिभासित है मुखच्छवि जिसकी! किन्तु आचार्य वसुव्रत तो कहते हैं..

❀ ❀ ❀ ❀

आषाढ़ी पूर्णिमा की रात में प्रद्युम्न सूरदास के साथ नदी के किनारे मैदान में गया। जिस समय वह वहाँ पहुँचा, उस समय आकाश घटा से घिरा था और अन्धकार बिजली की चमक से कभी-कभी झलमला उठता था।

प्रद्युम्न ने सूरदास के कहने के मुताबिक नदी में नहाकर कपड़ा बदल लिया। सूरदास के क्रिया-कलापों से प्रद्युम्न को मालूम पड़ने लगा, जैसे वह एक निपुण तान्त्रिक हो। उसके विहार में एक भिक्षुक योगाचार्य पद्मसम्भव का शिष्य था। उसी से उसने तान्त्रिकों के बारे में बहुत-सी बातें सुनी थीं। सूरदास ने अपने साथ रक्तजवा की बहुत-सी मालाएँ ली थीं। इन्हीं मालाओं में से कुछ उसने अपने आप पहन लीं और कुछ प्रद्युम्न को पहिनने के लिये दे दीं। अपने सिर के बालों को खोलते हुए उसने दीपक जलाया। पूजा के सभी आयोजन करते-करते प्रद्युम्न को हाँफी आने लगी। इस आयोजन का अन्तिम परिणाम क्या होगा, इसे देखने के लिए उसका मन बेचैन होने लगा। सुनसान रात में किसी तान्त्रिक के साथ रहने में सर्वसाधारण को जो एक भय-सा होता है, वह भय मानो प्रद्युम्न इस उत्सुकता की बाढ़ में बिल्कुल भूल गया। कई रात की पूजा-अर्चा के बाद यह काम समाप्त हुआ।

सूरदास ने कहा—प्रद्युम्न, मेरा काम तो पूरा हो चुका। अब तुम अपना काम शुरू करो। लेकिन सावधान, अब तुम्हारे कर्तृत्व के ऊपर ही सारी सफलता अवलम्बित है।

सूरदास की आँखों में जो इस समय एक सुधापूर्ण संसार का चित्र झलक रहा था, प्रद्युम्न को जाने क्यों अच्छा न लगा। फिर भी वह एकान्त-चित्त से बाँसुरी पर मेघ-मल्लार अलापने लगा।

उस समय हवा बन्द थी। चारों ओर नीरवता का राज था। अन्धकार में सामने की चीजें भी दिखाई नहीं देती थीं। कभी-कभी हवा की झकोर से मैदान के पार शाल वन में एक मर-मर आवाज़ छा जाती थी। समूची प्रकृति सुप्त थी। केवल जाग्रत थी भद्रावती नदी, जो किसी अनन्त के साथ अपने को मिला देने के लिए आकुल आग्रह के साथ दौड़ी जा रही थी—मन्द-मृदु गुंजन के साथ आनन्द-गीत गाती हुई, किनारे पर मधुर-मधुर ताल देती हुई! हठात् मन्दिर के सामने से एक बार सारा अन्धकार दूर हो गया। प्रद्युम्न ने देखा कि सामने मन्दिर में पूर्णिमा की ज्योत्स्ना के सदृश्य एक अपरूप रमणी-मूर्ति खड़ी है। उसके काले-काले बाल अस्त-व्यस्त भाव से उसकी ग्रीवा के चारों ओर फैले हुए हैं। उसकी बड़ी-बड़ी आँखें मानो किसी स्वर्गीय शिल्पी की तूलिका के नमूने है। बर्फ के समान उसके युगल बाहु फूलों से मंडित हैं और उसकी पतली कमर मेखला के बीच छिपी-छिपी-सी मालूम होती है। रक्त-कमल की तरह उसके दोनों पांव हैं, जिससे मालूम होता था कि मानो पृथ्वी से वासन्ती का विकास हो रहा है। प्रद्युम्न सोचने लगा—हाँ, यही तो वह देवी है, जिसकी वीणा के झंकार से संसार में शिल्पियों की सौंदर्य्य-तृष्णा मंगल-मुखी हो उठती है। इसी के आशीर्वाद से सत्य की सृष्टि होती है। आह, शाश्वत है इसकी महिमा, अक्षय है इसका दान, नित्य नूतन है इसकी वाणी!

प्रद्युम्न के देखते ही देखते देवी की मूर्त्ति धीरे-धीरे अन्तर्धान हो गई। ज्योत्स्ना म्लान हो गई। हवा निस्तेज भाव से बहने लगी।

बहुत देर तक तो प्रद्युम्न मोहाच्छन्न बना रहा। क्या जो कुछ उसने देखा वह सत्य था, या स्वप्न? अन्त में सूरदास की आवाज ने उसकी निद्रा भंग की। उसने कहा—मेरा काम तो अभी भी समाप्त नहीं हुआ है। पर तुम अगर चाहो तो जा सकते हो। मेरी बात की सत्यता तो तुम्हें मालूम हो ही गई?

इस समय सूरदास की बातें कैसी असंलग्न थीं, इसे प्रद्युम्न ने देखा। उसकी दोनो आँखें अन्धकार के बीच भी जैसे चमक उठीं।

सूरदास से विदा होकर जब कि वह विहार की ओर चला, तब पूर्णिमा के चाँद को बादलों के दल ने छिपा लिया था। कभी-कभी एकाध बार ज्योत्स्ना चमक जाती थी अवश्य; पर उसका रंग बहुत ही हल्का था—जैसा कि अनेकों बार उसने ग्रहण के समय में देखा था।

मन्दिर का हाता बहुत बड़ा था, अतः कुछ समय तो इसी को पार करने में लग गया। इसके बाद फिर जंगल मिला। जंगल बहुत ही घना था। शाल और देवदारु के बड़े-बड़े वृक्षों की डालें आपस में मिलकर एकान्त भाव से आलिंगन-परिरम्भण कर रही थीं। कहीं मार्ग में ही भोर न हो जाय, इस भय से वह बहुत ही तेजी के साथ बढ़ता जा रहा था। जाते-जाते उसकी नजर जंगल के एक स्थान पर पड़ी, जहाँ से थोड़ा-थोड़ा प्रकाश निकल रहा था। पहले तो उसने सोचा कि यह प्रकाश वृक्षों के पत्तों से होकर सूर्य से आ रहा है, पर फिर वैसा प्रकाश नहीं देखकर वह उसी ओर जंगल में घुस पड़ा। जिस पीपल के वृक्ष की डालों से होकर प्रकाश फूट रहा था, उसके समीप पहुँचकर प्रद्युम्न ने देखा कि यह तो वही अपरूप सुन्दरी स्त्री है, जिसे उसने मन्दिर में देखा था। वह अवाक् रह गया। और साश्चर्य्य भाव से सोचने लगा; मैंने जिसे मन्दिर में देखा था, वही नारी इस अन्धकार-पूर्ण भयंकर जंगल में क्यों अकेली बिचर रही है? जुगनू के शरीर से जिस प्रकार की रोशनी चारों ओर छिटकती मालूम होती है, ठीक उसी तरह का प्रकाश इस रमणी के शरीर से भी बाहर फूट रहा था। प्रद्युम्न ने उसके समीप जाकर देखा कि रमणी की दोनों आँखें झँप झँपा-सी रही हैं, जैसे बहुत रात तक उसे जागना पड़ा हो। और वह बड़ी व्यग्रता-पूर्वक जंगल से बाहर होने का मार्ग खोज रही हो। पर मार्ग नहीं मिलने के कारण वृक्षों की सघन पंक्तियों के बीच अन्धकार में चक्कर काट रही हो। इस चिन्ता के मारे उसकी मुखाकृति बहुत ही विपन्न हो गई थी।

प्रद्युम्न को अचानक भय होने लगा। वह सरस्वती के दर्शन के बाद से होनेवाली सभी घटनाओं को एक-एक कर सोचने लगा और कहीं कोई भयंकर काण्ड घटित न हो जाय, इस चिन्ता से बेचैन होने लगा।

वह वहाँ और अधिक देर तक खड़ा नहीं रह सका। वन से भागता-भागता जिस समय अपने विहार के उद्यान में पहुँचा, उस समय चन्द्रमा म्लान होकर अस्ताचल में विलीन होने जा रहा था।

भोर में अपनी शैय्या पर सोये हुए उसने स्वप्न देखा कि भद्रावती नदी के किनारे एक देवी अपना मार्ग भूल गई है। वह मार्ग की खोज में जितना ही बेचैन होती है, उतनी ही नदी की धारा उसे बाधा पहुँचाती है। यहाँ तक कि नदी की बाढ़ से एक बार उसकी शरीर की अपनी ज्योति भी छिप जाती है और वह अन्धकार में भटकने लगती है। नदी की मछलियाँ उसके कोमल कमल जैसे पदों को अपने आघात से घायल कर देती हैं और वह व्यथितदेहा विपन्ना होकर रोने लगती है। इसी समय एक बहुत बड़ी मछली अपने हिंस्र दाँत निकालकर अट्टहास्य कर उठती है, और वह अट्टहास्य उसे सूरदास की हँसी की तरह मा म होता है।

* * *

बिछौना छोड़ने के साथ ही प्रद्युम्न आचार्य पूर्णवर्धन के निकट गया और प्रथम मिलन से लेकर गत रात्रि तक सूरदास के साथ जो कुछ भी उसने किया था, सभी खोलकर कह दिया। आचार्य पूर्णवर्धन बौद्ध दर्शन के अध्यापक थे। विहार के भिक्षुओं में सबसे अधिक विज्ञ और वृद्ध भी वही थे। इसलिए सभी आश्रमवासियों के बीच उनकी खासी अच्छी क़द्र थी। प्रद्युम्न की बात सुनकर वे विस्मित, साथ-ही-साथ कुछ दुःखी भी हो उठे। उन्होंने बड़ी व्यग्रता से पूछा—तुमने ये सब बातें मुझसे पहले क्यों नहीं कहीं?

'उन्होंने मना किया था। मैंने उनसे प्रतिज्ञा...'

'समझा। फिर अब क्यों कहने आये?'

'अब मेरे मन में लगा जैसे इसे कर मैंने किसी को कुछ नुकसान पहुँचाया हो।'

आचार्य पूर्णवर्धन क्षण भर तो मौन रहे। फिर बोले—इस प्रकार की कोई घटना कभी शीघ्र ही घटेगी, यह मैं जानता था। पद्मसम्भव और उसके अनेक अदूरदर्शी तान्त्रिक शिष्य देश के धर्म-कर्म यों मिटा देने के उद्योग में हैं। अपने मतलब के लिए संसार में ऐसा कोई काम नहीं जो वे करने से हिचकिचाएँ। और प्रद्युम्न, मैं यह भली भाँति देख रहा हूँ कि तुम्हारी इस कौतुक-प्रियता और अबाध्यता में ही तुम्हारा सर्वनाश छिपा है। गत रात तुमने बहुत ही बुरा काम किया है। देवी सरस्वती को बन्दिनी बनाने के काम में सहयोग देकर तुमने पाप कमाया है।

यह प्रद्युम्न के लिए महान् विस्मय का समय था। उसके मुख से एक शब्द भी नहीं निकला। आचार्य पूर्णवर्धन बोले—इन बुराइयों से बचाये रखने के लिहाज से ही मैं किसी छात्र को कभी विहार के बाहर जाने की इजाजत नहीं देता। किन्तु जाओ तुम अभी अनजान बालक हो; इसमें तुम्हारा भी कोई अधिक दोष नहीं है। अच्छा, सूरदास का रूप-रंग, रहन-सहन कैसा है, यह तो मुझे ज़रा बतलाओ।

प्रद्युम्न ने सूरदास की आकृति का पूरा वर्णन किया।

पूर्णवर्धन बोले—मैं जानता हूँ, तुमने जिसे सूरदास समझा है, वह सूरदास नहीं है; और न उसका घर ही अवन्ती है। वह तो प्रसिद्ध कापालिक गुणाढ्य है। अपनी कार्य-सिद्धि के लिए उसने तुमको अपना झूठा नाम बतला दिया।

प्रद्युम्न आकुलता-पूर्वक बोला—और आपने जो अभी कहा...

पूर्णवर्धन बोले—वह कथा भी कहता हूँ, सुनो। नदी के किनारे सरस्वती-मन्दिर का जो भग्न स्तूप है, वहाँ पहले से हिन्दुओं का एक बहुत ही मशहूर तीर्थ-स्थान है। आज से दो सौ साल पहले उस मन्दिर की व्यवस्था बड़ी ही अच्छी थी और उसमें एक निपुण तरुण गायक निवास करता था। प्रवाद यह है कि वह गायक मेघ-मल्लार राग में बहुत ही उस्ताद था और जब वह गाता था, तो साक्षात् सरस्वती उसके सामने आविर्भूत हो जाती थीं। और यह भी एक कारण था, जिससे वह मन्दिर बहुत ही प्रसिद्ध हो गया। उस सिद्ध गायक के मर जाने के बाद भी पूर्णिमा की रात में मेघ-मल्लार गाने से वह देवी सामने आ जाती थी और गानेवाले को वरदान देकर कृतार्थ कर देती थी।

वह तान्त्रिक गुणाढ्य अवन्ती के गायक सूरदास के साथ एक बार उस मन्दिर में मौजूद था। सूरदास तो मेघ-मल्लार में सिद्ध था ही, अतः उसके गान को सुन देवी सरस्वती प्रगट हो गईं और उसे वर दिया कि वह संसार के गायकों में सर्वश्रेष्ठ रहेगा। इसके बाद देवी ने जब गुणाढ्य से वर माँगने को कहा—तो उसने देवी के रूप पर मुग्ध होकर देवी से सदा अपने साथ ही रहने का वर माँगा।

सरस्वती ने कहा—मुझे सदा के लिए अपने बन्धन में बाँध लेना किसी निर्गुण का काम नहीं है। यद्यपि उसका नाम गुणाढ्य था; पर किसी कला में उसकी निपुणता नहीं थी। इसलिए सरस्वती के पाने में असमर्थ रहा। सरस्वती के

अन्तर्धान होते ही उसका मोह और भी बढ़ गया और इस प्रकार वह देवी के ऊपर अत्यन्त कुपित हो उठा। अब वह तन्त्र के सहारे देवी को बन्दिनी बनाने के लिए किसी योग्य तान्त्रिक गुरु की खोज करने लगा। मैं जानता हूँ कि उसने एक संन्यासी से किसी तरह तन्त्रोपदेश लिया; पर संन्यासी को जब उसकी तन्त्र-साधना का पतित उद्देश्य मालूम हो गया, तो उसने उसे अपने पास से भगा दिया। ये बातें यहाँ के सभी बड़े-बूढ़े भी जानते हैं। इसके आगे गुणाढ्य का कोई समाचार मुझे मालूम नहीं था। मैं सोचता था कि वह लज्जा से कहीं इस देश को छोड़कर निकल गया होगा। किन्तु अभी तुम्हारी बातों से पता चलता है कि कल रात में उसने अपने संकल्प को पूरा कर लिया। जाओ, अभी तुम जाकर पता लगाओ कि वह मन्दिर ही में है या नहीं? यदि हो तो मेरा समाचार कहना।

प्रद्युम्न अब वहाँ एक मिनट भी अधिक खड़ा नहीं रह सका। वह विहार के उद्यान की ओर भागता हुआ गया। उस समय धूप खूब निकल आई थी। विहार के विद्यार्थियों के स्तोत्र-गान उसके कानों में पड़े—

ये धर्मा हेतु पभवा,
तेसम् हेतुम् तथागता आह।
तेसच ये निरोधो,
एवं वदी महासमनो।

भागते ही भागते उसने देखा—उद्यान की एक ओर एक बड़े जामुन के वृक्ष की छाया में चित्रकार भिक्षु वसुव्रत मृगचर्म पर बैठकर कुछ आँक-सा रहा है। और उसके मुख पर किसी अतृप्ति तथा असाफल्य का कुछ चिह्न-सा झलक रहा है।

प्रद्युम्न ने जैसा सोचा था, वही हुआ। मन्दिर में जाकर उसने देखा कि वहाँ कोई नहीं है। गुणाढ्य तो गायब है ही, वह आजीवक संन्यासी भी नहीं है। यवागू पान के दो एक घड़े और अग्नि दीप्त करने के लिए कुछ सूखी लकड़ियाँ मन्दिर के बीच में इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं।

उसी दिन रात्रि में बिना किसी से कुछ कहे-सुने प्रद्युम्न ने चुपचाप अपना विहार परित्याग किया।

❀ ❀ ❀ ❀

इसके बाद एक वर्ष बीत गया। विहार छोड़ने के बाद प्रद्युम्न एक बार केवल सुनन्दा से जाकर मिला था। और उससे कहा था कि कुछ विशेष काम से वह विदेश जा रहा है, शीघ्र ही लौट आयेगा। इस एक वर्ष में कांची, उत्तर कौशल और मगध—तमाम की धूल उसने छान डाली, पर गुणाढ्य का पता कहीं भी नहीं चला।

इस उद्देश्य में घूमते-घामते उसने अनेक कौतूहलजनक बातें सुनीं।

राजा के आदेशानुसार मगध का प्रसिद्ध शिल्पी मिहिरगुप्त भगवान बुद्ध की मूर्ति बनाने में व्यस्त था। लगातार एक साल की मेहनत पर उसने जो मूर्ति बनाई, उसकी मुख-श्री ऐसी भद्दी और भावहीन दिखाई दी कि लोग निश्चय ही नहीं कर पाये कि यह भगवान बुद्ध की मूर्ति है, या मगध के दुर्दान्त दस्यु की।

तक्षशिला के विख्यात् दार्शनिक पण्डित यमुनाचार्य मीमांसा-दर्शन के भाष्य-प्रणयन में लगे थे। किन्तु अचानक उनकी ऐसी भद्द हुई कि सूत्रों के अर्थ लिखने के बजाय उन्हें पाणिनि का सुबन्त-प्रकरण शुरू करना पड़ा।

महाकोटि विहार के चित्र-विद्या-विशारद भिक्षुक वसुव्रत 'बुद्ध और सुजाता' नामक चित्र वर्षों के कठिन परिश्रम के बाद भी अपने मन के मुताबिक नहीं बना सके। और इससे विरक्त होकर इन दिनों वे पक्षी-विज्ञान की चर्चा में अधिक दिलचस्पी लेने लगे हैं।

एक दिन प्रद्युम्न को पता चला कि उरुविल्व नामक किसी गाँव में एक पशु-चिकित्सक रहता है जिसके बारे में ठीक-ठीक कोई कुछ नहीं जानता। पर उसने उसके रूप-रंग के बारे में जो कुछ सुना है, इससे उसे मालूम हुआ, जैसे वही सूरदास हो। प्रद्युम्न ने गाँव में जाकर बहुत कुछ तलाश भी किया, पर ठीक-ठीक किसी ने भी कुछ नहीं बतलाया।

इसी समय थका माँदा-सा वह गाँव के बाहर एक वृक्ष की छाया में बैठा था। शाम तब भी नहीं हुई थी। मृदु, मन्द वायु के झोंके से पत्ते डोल रहे थे। सामने खेत में पके नाज की डालियाँ सोने की तरह चकमका रही थीं। कुछ दूर एक गहरा-सा जलाशय है, जिसमें बड़े-बड़े कमल के फूल खिले थे; और बहुत से वन्य हंस जलक्रीड़ा कर रहे थे।

कुछ ही दूर सामने एक छोटा-सा पहाड़ था। पहाड़ से लगा एक झरना बहता था। पहाड़ के नीचे कुछ दूर पर एक गड्ढे में झरने का जल कुछ रुक-सा गया

था; जिससे एक गहरे जलाशय की सृष्टि हो गई थी। प्रद्युम्न ने अचानक देखा था कि पहाड़ के ऊपर से एक स्त्री बगल में घड़ा दबाये कदम-ब-कदम नीचे उतर रही है।

वह सन्देहयुक्त होकर कुछ आगे चला। जलाशय से कुछ ऊँची सतह पर पहुँचकर जैसे उसका सिर चकरा उठा। वह सोचने लगा—यही, यही तो वह है। भद्रावती नदी के किनारे शाल वन में मार्ग भूलकर यही तो भटक रही थी; मैदान के बीच उजेली रात में इसी को तो उसने देखा था; पर आज इसके शरीर पर उस प्रकाश का एक कण भी शेष नहीं है। इसके वस्त्र भी मलिन हैं। पर वही सुन्दर मुख, वही आँखें और वही सुन्दर गठन।

खड़े-ही-खड़े प्रद्युम्न ने देवी को खूब गौर से देखा और उसके मन में अब किसी प्रकार कुछ सन्देह नहीं रह गया। इस समय उसका मन अनेक उलझनों में फँस रहा था। वह आवेश में आकर विहार से सूरदास की तलाश में बाहर चला था अवश्य, पर भेंट हो जाने पर वह क्या करेगा, यह सोच नहीं पाया था, किन्तु किसी काम से ही छिपकर वहाँ से चला था।

नित्य शाम को प्रद्युम्न उस वटवृक्ष की छाया में आकर बैठता और नित्य शाम से पहले वह देवी पहाड़ से नीचे उतरती और बगल में जल भरा घड़ा दबाकर चली जाती।

* * * *

इसी प्रकार कुछ दिन बीते। प्रद्युम्न एक रोज मैदान में वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठा था। उसी समय देवी जलाशय के किनारे पानी लेने के लिए उतरी। कुछ सोचकर प्रद्युम्न भी जलाशय के किनारे एक ओर जाकर खड़ा हो गया। देखा—देवी घड़ा घाट पर रखकर फूल चुनने में व्यस्त है। एक बड़ा-सा सुन्दर कमल का फूल जलाशय के उस पार जल में खिला था। उसके पाने की कोशिश करने पर भी पाने में सफल न हो सकी। अतः दूसरी ओर प्रद्युम्न को खड़ा देखकर बोली—क्या मुझे वह फूल तोड़ दोगे?

'हाँ, यदि आप एक काम करें।'

'क्या, कहो?'

'क्या आप मुझे कुछ खाने को दे सकेंगी ?'

देवी के मुख पर कुछ दुःख के चिह्न दिखाई दिये। बोली—इतनी देर से बोले क्यों नहीं ? इस पार आओ, छोड़ दो वह फूल।

प्रद्युम्न ने जल में जाकर उस फूल को तोड़ लिया। फिर उस पार देवी के निकट पहुँचा।

देवी बोली—तुम मैदान में इसी वृक्ष के नीचे रोज बैठा करते हो न ?

प्रद्युम्न देवी के हाथ में फूल देते हुए बोला—हाँ, मैं भी देखता हूँ कि आप नित्य संध्या मे यहाँ जल भरने को आती हैं।

देवी विहँसते हुए बोली—इसी पहाड़ पर मेरा घर है। तुम मेरे साथ आओ, वहीं तुम्हें कुछ खाने को दूँगी।

हठात् देवी ने एक बार चारों ओर कातर दृष्टि से देखा, फिर पहाड़ के पत्थरों पर कांटी गई सीढ़ियों के द्वारा कदम-ब-कदम ऊपर चढ़ने लगी। प्रद्युम्न भी पीछे-पीछे चला। पहाड़ के ऊपर जाकर उसने देखा कि कुछ दूर पर बाँस के झुरमुट की ओट में एक सुन्दर छोटी-सी कुटी है। टट्टी खोलकर देवी उसी में प्रविष्ट हुई। और प्रद्युम्न को भी भीतर आने का इशारा किया।

प्रद्युम्न ने देखा कि कुटी में कोई नहीं है। इसलिए पूछा—क्या यहाँ आप अकेली रहती हैं ?

देवी बोली—नहीं। मुझे यहाँ एक संन्यासी ले आया था। वह क्या करता है, सो मुझे मालूम नहीं। पर बीच-बीच में वह यहाँ बराबर आता-जाता रहता है।

देवी ने यवागू से भरकर एक पात्र प्रद्युम्न को पीने के लिए दिया। उस यवागू का स्वाद अमृत के बराबर था। ऐसा यवागू उसने और कभी नहीं पिया था।

प्रद्युम्न ने सोचा—यदि आचार्य पूर्णवर्धन की बातें सच हैं और जो कुछ मैंने देखा है, वह स्वप्न नहीं है तो वही सरस्वती तो मेरे सामने है। उसे यह जानने का कौतूहल हुआ कि वह स्वयं अपने बारे में क्या कहती है। अतः पूछा—आप इसके पहले कहाँ थीं ? और आपका घर कहाँ है ?

उस समय देवी एक काठ के बड़े-से पात्र में बड़ी ही सतर्कता-पूर्वक दाल और भात परोसने में व्यस्त थी। सुनते ही विस्मय के साथ प्रद्युम्न को देखकर बोली—मेरी बात पूछते हो ?···मेरा घर कहाँ है, यह मुझे मालूम नहीं । मैं विदिशा के मार्ग में एक जीर्ण मन्दिर के किनारे पड़ी थी; वहीं से यह संन्यासी मुझे उठाकर यहाँ लाया । तब से मैं यहीं हूँ, उसके पहले मैं कहाँ थी, सो मालूम नहीं ।

इतना कहने के बाद वह अनमने भाव से उरुविल्व ग्राम की ओर जहाँ से सूर्य अपनी अन्तिम लाल किरणों को छोड़कर वन की तरफ प्रस्थान कर रहे थे, देखने लगी । देखते-देखते ही वह अपने मन में न मालूम क्या याद करने की कोशिश करती रही, पर जैसे याद नहीं आई । फिर न मालूम क्या सोचकर हठात् कमल-दल के समान अपनी आँखों से आँसू टपकाने लगी । मगर क्षण भी बीतने नहीं पाया कि जल्दी-जल्दी आँखों से आँसू पोंछकर प्रद्युम्न के सामने वह अन्न से भरा घड़ा रखा और बोली—खाने योग्य सामग्री तो कुछ नहीं है । तुम आज रात में यहाँ ठहर जाओ । कमल के दाने की खीर बनाकर मैं तुम्हें खिलाऊँगी । सवेरे चले जाना ।

प्रद्युम्न की आँखों में आँसू आ रहा था । वह सोच रहा था —आह, विश्व की आत्मविस्मिता सौन्दर्य-लक्ष्मी ! विदिशा के महाराज अरुण के रत्नभंडार तुम्हारे पदों की धूलि के बराबर भी नहीं हैं पर वहीं के मार्ग की धूल ने ऐसे कौन-से पुण्य कमाये थे कि तुम वहाँ इस तरह पड़ी रही होगी ।

खाना समाप्त कर प्रद्युम्न ने जाने की इजाजत माँगी । देवी की आँखों में निराशा छा गई; बोली—आज रात में तुम ठहरते क्यों नहीं ? मैं रात में खीर बनाकर तुम्हें खिलाऊँगी ।

प्रद्युम्न बोला – क्या आप रात में यहाँ अकेली डरती नहीं ?

'खूब डरती हूँ । उस वेतस-वन में इतना अँधियारा छा जाता है कि भय के मारे मैं अपनी झोंपड़ी का दरवाजा नहीं खोलती । नींद भी नहीं आती, सारी रात बैठकर ही बिता डालती हूँ ।'

प्रद्युम्न ने अपनी आती हुई हँसी को छिपा लिया । सोचा, देवी बार-बार खीर खिलाने का लोभ दिखाकर मुझे इसी से रात में रोक रखना चाहती है । प्रकट में बोला—अच्छा, मैं आज रात में रहूँगा ।

देवी का मुख-मण्डल आनन्द से प्रोत्साहित हो उठा। आज की रात प्रद्युम्न के साथ खुली हवा में बैठकर उसने बिताई। आनन्द-विह्वल होकर बोली—आह, इतनी सुन्दर चाँदनी है; पर भय के कारण मैं बाहर हो नहीं पाती थी! सारी रात अकेली बैठकर घर में ही बितानी पड़ती थी।

देवी की इन बातों से प्रद्युम्न का विस्मय अधिक से अधिकतर होता जा रहा था। मन्त्र की शक्ति ही क्यों न हो, पर ऐसी आत्मविस्मृति की कल्पना उसने कभी स्वप्न में भी नहीं की थी। देवी के साथ इधर-उधर की विविध बातों में रात बिताकर सवेरे वह विदा के लिए उद्यत हुआ।

देवी बोली—संन्यासी के आने पर एक दिन तुम यहाँ आओ।

उस रात के बाद से प्रति रात में देवी से छिपकर वह पहाड़ के नीचे बैठा-बैठा कुटी की खबरदारी किया करता। उसका तरुण वीर हृदय एक अबला को जंगल मे अकेला छोड़ जानेवाले के प्रति विद्रोह की सृष्टि कर रहा था।

दस-पन्द्रह रोज़ बीत गये।

प्रद्युम्न रोज़-रोज़ सुनता कि देवी अकेले में गाती है। उस गीत की स्वर-लहरी पृथ्वी-वासी साधारण मानव के गीत की स्वर-लहरी के सदृश नहीं है। प्रत्युत उसमें प्राणोन्मादिनी आदिम निर्झरिणी का स्वर-लालित्य है और है आदिम तारिका का सरल स्वर-सामंजस्य!

* * * *

एक रोज़ दोपहर में उससे न मालूम किसने कहा—तुम जिस गोचिकित्सक की तलाश कर रहे थे; उसे मैं अभी देखकर आ रहा हूँ। वह यहाँ से थोड़ी दूर पर मार्ग के ही बगलवाले पोखरे में स्नान कर रहा है।

इतना सुनते ही भागता-भागता-सा वह पोखरे के निकट पहुँचा। देखा—गुणाढ्य सचमुच उसी पोखरे में एक कोर पर अपने सारे सामान रखकर स्नान के लिए बैठा है। ऊपर ही खड़ा होकर प्रद्युम्न उसकी प्रतीक्षा करने लगा।

कपड़ा बदलकर ऊपर आते ही संन्यासी ने जब प्रद्युम्न को देखा, तो कुछ देर तक पहले स्तम्भित रह गया; फिर बोला—तुम यहाँ कैसे? प्रद्युम्न ने उत्तर दिया—मैं यहाँ कैसे आया, सो क्या अभी आपने नहीं समझा?

गुणाढ्य—प्रद्युम्न, तुम अब मुझे अधिक मत लज्जा में डालो। उस काम के बाद से ही मैं बहुत दुःखी हूँ। नींद में भयंकर स्वप्न देखता हूँ—जैसे कोई कहता है कि तुमने जो काम किया है, उसका दंड अनन्त नरक होगा।

एक पखवारे से ऊपर हुआ, इसी लिए मैं अपने गुरु आजीविक संन्यासी के पास गया था। वशीकरण मन्त्र की शिक्षा भी मुझे उन्हीं से मिली थी। इसमें ऐसी ताकत है, जिसे चाहूँ आबद्ध कर दूँ; पर आकर्षित नहीं कर सकता। इसी लिए मैंने तुमको साथी बनाया था। मैं गाना बिल्कुल नहीं जानता, ऐसी बात नहीं। पर मेघ-मल्लार में तुम्हें विशेष जौहर हासिल है, यह बात मुझे अच्छी तरह मालूम थी। मुझे विश्वास था, तुम्हारे गान से आकर्षित होकर देवी अवश्य आयगी और तब मैं अपने मन्त्र से उसे आबद्ध कर लूँगा। किन्तु इसके आगे मुझे यह विश्वास नहीं था कि मन्त्र में इस प्रकार की प्रबल शक्ति है, कि कोई आत्मविस्मृत हो जायगा। सच पूछो तो कुछ-कुछ मन्त्र-गुण की परीक्षा के खयाल से भी मैंने यह काम किया था।

प्रद्युम्न बोला—पर अब तुम्हारा क्या विचार है?

गुणाढ्य ने उत्तर दिया—अभी मैं अपने गुरु के पास से ही आ रहा हूँ। उन्होंने मेरी सारी बातें सुनकर मुझे एक दूसरा भी मन्त्र बतलाया है। इसमें पूर्व मन्त्र की विरोधी शक्ति है। इस मन्त्र से पूत जल यदि देवी पर छिड़क दिया जाय तो वह बन्धन-मुक्त हो सकती है। पर जल छिड़कनेवाले के लिए कल्याण का कोई मार्ग नहीं है।

प्रद्युम्न बोला—छिड़कनेवाले के लिए कल्याण क्यों नहीं है?

'जो जल छिड़केगा, वह पत्थर हो जायगा। पर मेरे लिए तो इस समय दोनों ही बराबर हैं। अतः उसे बन्दिनी रखने में ही मुझे सुख है। क्रोध मत करो, प्रद्युम्न! जरा विचार कर देखो! मरने के बाद तो दूसरा संसार है; पर अभी पत्थर हो जाने पर? इसी लिए उस काम को तो मैं नहीं कर सकता।'

इस समय आत्म-विस्मृता बन्दिनी देवी के दोनों करुण नेत्र प्रद्युम्न को याद हो आये। यदि किसी ने जल नहीं छिड़का, तो सदा के लिए संसार से विद्या और कला का लोप हो जायगा—यह खयाल उसे आकुल बनाने लगा।

सदा जिस उदार उच्च प्रेरणा से नवजवानों के हृदय तरंगित होते रहे हैं, आज प्रद्युम्न का हृदय भी उसी उच्च प्रेरणा से तरंगित हो उठा। उसने सोचा—एक मानव का जीवन तो बहुत तुच्छ है। उसके कोमल कमल जैसे चारु चरणों में एक काँटा लग जाने मात्र से आवश्यकतानुसार मैं अपने जीवन को सैकड़ों बार न्योछावर कर सकता हूँ।

गुणाढ्य की ओर देखकर बोला—चलिये मैं आपके साथ चलता हूँ। मुझे वह मन्त्र-पूत जल आप दीजियेगा।

गुणाढ्य विस्मय के साथ प्रद्युम्न को देखने लगा। बोला—खूब अच्छी तरह विचार लो। यह बच्चों का खल नहीं है। यह काम...

प्रद्युम्न—हाँ, हाँ, चलिये आप।

झोपड़ी के निकट पहुँचकर गुणाढ्य ने कहा—प्रद्युम्न, एक बार और विचार लो। किसी झूठी आशा में मत भटको। इससे बाद में उद्धार करने की ताकत देवी में भी नहीं है। मंत्र के बल के कारण तुम्हारे प्राण बिल्कुल जड़ हो जायँगे। मंत्र की शक्ति अमोघ है, निर्मल है। बाद में छुटकारा नहीं मिलता।

प्रद्युम्न बोला—आप जो सोच रहे हैं, क्या उसे मैं कुछ ग्रहण भी कर रहा हूँ? नहीं, चलिये, आगे बढ़िये।

वे जब कुटी के सामने पहुँचे, तब धूप कम हो रही थी। देवी बाहर ही घास पर अन्यमनस्क भाव से चुप बैठी थी। प्रद्युम्न को आते देखकर वह बहुत खुश हुई। हँसती हुई बोली—आओ, आओ। मैं तुम्हारे बारे में प्रायः सोचा करती हूँ। मैं तुम्हें उस दिन कुछ खिला न सकी, इसलिए हृदय बहुत दुःखी था। अब तुम यहाँ कुछ दिन ठहरो। इतना कहने के बाद दोनों के लिए खाना तैयार करने के लिए वह व्यस्त भाव से कुटी में चली गई।

प्रद्युम्न बोला—कहाँ? कहाँ है वह मन्त्र-पूत जल? दीजिये न मुझे!

गुणाढ्य—क्या सचमुच ही तुम तैयार हो?

प्रद्युम्न बोला—मैं अब कुछ अधिक कहना नहीं चाहता। जल जल्द दीजिये।

देवी ने दोनो को खाना लाकर दिया। खाते-पीते शाम हो चली। वेतस-वन में छाया फैल गई। सूर्य की लाली उरुविल्व गाँव के ऊपर दिखाई देने लगी। गोधूलि के प्रकाश में देवी का मुख-मण्डल अपरूप शोभा से खिल उठा। इसके

बाद नित्य की तरह जल लाने के लिए बगल में घड़ा दबाकर वह पहाड़ के नीचे चल पड़ी।

गुणाढ्य बोला--मैं यहाँ से आगे बढ़ता हूँ। देवी के लौटने पर यह जल से भरा घड़ा तुम उसके अंगों पर छिड़क देना।

इतना कहते-कहते उसका गला भर आया। फिर आवेश में आ प्रद्युम्न को गले से लगाकर वह बोला--मैं कायर हूँ। मुझमें वह साहस नहीं है, नहीं तो मैं...

इसके बाद जल्दी-जल्दी कुटी के भीतर से उसने अपना सभी सामान समेटकर बाँध लिया। फिर प्रद्युम्न को अन्तिम नमस्कार कर पहाड़ के ढालू मार्ग से दूसरी ओर चल पड़ा। उसी तरफ नीचे से कुछ दूर पर मगध होकर विदिशा जाने का राजमार्ग था।

बैठे-ही-बैठे एक बार चारों ओर अपनी नजर दौड़ाकर प्रद्युम्न ने विचारा, बीस वर्ष पहले इसी नीलाकाश के नीचे अपनी माँ की गोद में मैंने जन्म लिया था। पर आज माँ बनारस में अपने मकान की खिड़की पर बैठी साध्य गगन को देखकर इस प्रवासी पुत्र की याद कर रही होगी। फिर एक बार अपनी माँ का मुँह अच्छी तरह देख लेने के लिए उसका प्राण तड़प उठा। आह! आज पूर्वाकाश में नवमी का चाँद कितना स्वच्छ, कितना सुहावना मालूम हो रहा था!

प्रद्युम्न की आँखें आँसुओं से डबडबा आईं। इसी समय उसने देखा कि देवी जल-पूर्ण घड़ा लेकर पहाड़ पर बढ़ी चली आ रही है।

मन्त्र-पूत जल का घड़ा उसने पृथ्वी पर रख दिया था, देवी को आते हुए देखकर उसे हाथों में उठा लिया।

देवी झोपड़ी के सामने आई। उसके हाथ में कुछ अधखिले कमल के फूल थे। प्रद्युम्न से पूछा वह संन्यासी किधर गये?

प्रद्युम्न--वह अभी कहीं चले गये, आज नहीं लौट सकेंगे।

इसके बाद देवी के निकट आकर उसने उसके चरणों की धूल अपने मस्तक पर रखी, और सिर झुकाकर बोला--माँ, तुम नहीं जानतीं कि मैंने तुम्हारे साथ कितना बड़ा अन्याय किया है! आज उसी का दण्ड मुझे लेना होगा; पर इसके लिए मैं जरा भी दुःखी नहीं हूँ। जब तक मैं संज्ञा-हीन नहीं हो जाता, कम-

से-कम तब तक तो मुझे इस बात का सुख है कि विश्व की सौन्दर्य-लक्ष्मी को अन्याय के बंधन से मुक्त करने का अधिकार भी मैंने ही प्राप्त किया है।

देवी अचरज-भरी आँखों से प्रद्युम्न को देखती रही।

प्रद्युम्न बोला—आप अपने मन में अच्छी तरह याद लाने की कोशिश तो करें कि आप यहाँ कहाँ से आई?

देवी बोली—क्यों, मैं तो विदिशा के मार्ग के किनारे...!

इसी समय प्रद्युम्न ने अंजलि भर जल लेकर उसके सर्वाङ्ग पर छिड़क दिया। तत्काल नींद से चौंकी हुई की तरह वह अपनी आँखें मींजने लगी। प्रद्युम्न ने तत्काल एक दूसरी अँजुली जल उस पर छिड़का। इस क्षण उसे अपनी आँखों के सामने एक अपूर्व सौन्दर्य-हिल्लोल आता दिखाई दिया। उसका सारा शरीर आनन्द के आवेग से सिहर उठा। साथ-ही-साथ उसे बनारस में छत की खिड़की पर बैठी हुई अपनी वही माँ याद आई!

× × ×

विहार के कुमार कक्ष में आचार्य शीलव्रत के निकट एक अल्प-वयस्का बालिका ने दीक्षा ली है। उसका नाम है सुनन्दा। वह हिरण्यनगर के धनवान् श्रेष्ठी सामन्तदास की कन्या है। मा-बाप के बहुत समझाने पर भी वह शादी करने पर राजी नहीं हुई। अत्यन्त कम उम्र में प्रव्रज्या लेने के कारण वह विहार में सभी की श्रद्धा की पात्री हो गई है। वह विहार में अधिक किसी से मिलती-जुलती नहीं है, अपने काम में वह बराबर व्यस्त रहती है और कभी-कभी जब अवकाश मिलता है, तो अन्यमनस्क भाव से इधर-उधर देखा करती है।

चाँदनी रात में विहार के एकान्त ऊँचे स्थान में बैठकर वह न मालूम क्या सोचती है? मैदान में चाँदनी के बीच किसी को आते हुए देखकर वह उधर ही ताकने लगती है—जैसे उसका कोई प्रियतम कहीं से आनेवाला हो। मार्ग देखते-देखते प्रति प्रातः वह आकुल हो जाती और सोचती कि अभी नहीं तो शाम को और शाम को नहीं तो कल सवेरे वे आवेंगे। दिन-पर-दिन, संध्या-पर-संध्या, मास-पर-मास—इस प्रकार कितने सवेरे और संध्याएँ व्यतीत हो गईं; पर कोई आया नहीं। फिर भी वह बालिका सोचती—आयेंगे, आयेंगे, कल आयेंगे। और पत्तों की खड़खड़ाहट से चौंक पड़ती मानों वह आया।

हर रात में वह बड़ा अनोखा-अनोखा स्वप्न देखती है। जैसे कहीं किसी पहाड़ के घने जंगल में बेंत और बाँसों के झुरमुटों के बीच एक अर्द्ध-नग्न पाषाण मूर्ति पड़ी है। निस्तब्ध रात्रि में बेंत हवा से डोलता है, बाँस से शिर-शिर शब्द होता है और कुछ उसी के पत्तों से उस पाषाण मूर्ति का मुख ढँक गया है। और उस बाँस से निकलनेवाली झंझा वायु में केवल मेघ-मल्लार का स्वर सुनाई देता।

भोर में स्वप्न से जगकर उसे आश्चर्य होता है--कहाँ है वह बेंत का वन? किधर है वह पहाड़ और किसकी है वह पाषाण-मूर्ति! और किस लिए ये सब हैं निरर्थक स्वप्न!...